प्रो० वागीश 'दिनकर'

सूक्ष्मागम–सप्तशती

काव्यानुवाद

प्रो. वागीश 'दिनकर'

प्रकाशकः

शैवभारती–शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी– 221001

शुभसंकल्पवाक्

जंगमवाडी मठ 'संस्थान, वाराणसी द्वारा शैवागमशास्त्र के अनेक दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है तथापि सामान्यजन मानस में उक्त ग्रन्थों को लोकप्रिय करने के उद्‌देश्य से शैवभारती शोध प्रतिष्ठान ने शैवागम के अद्यावधि प्रकाशित ग्रन्थों का 'काव्यानुवाद' कराने का निश्चय किया। इसका शुभारम्भ 'सूक्ष्मागमः' से हो रहा है।

प्रकृत प्रसंग में काव्यरचना के क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ कवि प्रिय वागीश 'दिनकर' ने हमारे संकेत मात्र को सोत्साह स्वीकार किया। काव्यानुवाद माला का आद्यपुष्प सूक्ष्मागमः है। एममेव कारणागमः चन्द्रज्ञानागमः,मकुटागमः:, पारमेश्वरागमः आदि काव्यानुवाद की श्रेणी में हैं।

प्रो0 वागीश 'दिनकर' पिलखुवा (हापुड) उ. प्र. के राणा शिक्षा शिविर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के अनेक वर्ष तक प्राचार्य रहे हैं। उनकी संस्कृत की महनीय कृतियाँ उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान से प्रशंसित एवं पुरस्कृत भी हो चुकी हैं। डी. लिट्. उपाधि से सभाजित विद्वान् प्रिय वागीश दिनकर जी ने समानांतर पद्यबद्ध शैली में उक्त कृति को प्रतिपादित कर सुधी पाठकों को अपनी वैदुष्यपूर्ण काव्य परम्परा से परिचित कराने का उत्तमोत्तम प्रयास किया है। हम उन्हें पीठ के आद्यसंस्थापक जगद्‌गुरू विश्वाराध्य की ओर से अनेकानेक मंगलाशीर्वाद प्रदान करते हैं।

आशा है कि उनकी रचना शैली से शैव भारती शोध प्रतिष्ठान के साहित्य भण्डार में निरन्तर सारस्वत वृद्धि होती रहेगी।

महाशिवरात्रि
संवत् 2079

श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
जगद्‌गुरू डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

मन के झरोखे से

यह मेरे पूर्वजन्म का कोई सुफल ही था जिसके कारण काशी के विश्रुत विद्वान् परमविनयी पं0 विनोद राव पाठक जी के माध्यम से परमपूज्य श्रद्धेय श्री 1008 जगद्गुरू डॉ0 चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी का न केवल दर्शन अपितु उनके अगाध वात्सल्य से यह अकिञ्चन अनुप्राणित एवं धन्य हुआ। प्रथम साक्षात्कार मे ही शैव दर्शन मानो भगवान् स्वयं हृदयंगम करा रहे हैं। यों जन्म–जन्मान्तर से भगवान् शिव मेरे आराध्य हैं। पूज्य महास्वामी जी ने बताया कि वैदिक साहित्य की तरह तन्त्र साहित्य, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थों मे, आरण्यकों में और स्मृतियों मे भी शिव की उपासना वर्णित है। तन्त्रों की रचना ही उमा–महेश्वर संवाद पर है। तन्त्रों के द्वारा भगवान् शंकर ने अपने महत्व को लेकर अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। सम्पूर्ण तन्त्र साहित्य शिवस्वरूप, शिव महिमा, शिवोपासना, लिंगार्चनपद्धति, लिंगपूजा के विधान से भरा हुआ है। कामिक आदि अट्ठाईस आगम सिद्धान्त आगम कहलाते हैं। परमपूज्य महास्वामी जी ने कुछ ग्रन्थ मुझे दिये जिसमें सूक्ष्मागम (क्रियापाद) भी था। पं. ब्रजबल्लभ द्विवेदी द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ मुझे अत्यधिक रूचा और भगवत्प्रेरणा हुई कि वीरशैवदर्शन से अनुस्यूत इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रतिपाद्य सुधीजन तक सुकरता से पहुँचाने हेतु उसका हिन्दी भाषा भारती में पद्यानुवाद आना चाहिए। यह ग्रन्थ देवी भगवती और महेश्वर शिव के मध्य हुए वीरशैवदर्शन के तत्त्वगत संवाद के रूप में दस पटलों में निरूपित है, जिसमें देवी श्रुतियों और तन्त्रों से सम्बन्धित शंकाएं प्रश्न के रूप में रखती हैं जिनका महेश्वर भगवान् शिव प्रीतिपूर्वक समाधान करते हुए उत्तर देते हैं। उपनिषदों में अधिकांशतः ज्ञान के आदान प्रदान की यही शैली अपनायी गयी है।

वास्तव में इस प्रकार के दुरूह तत्त्वज्ञान को भावानुदित करने की योग्यता मुझ जैसे अल्पमति में नहीं हो सकती किन्तु यह श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर परमपूज्य श्री 1008 जगद्गुरू डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी जो साक्षात् शिवस्वरूप ही हैं के माध्यम से भूतभावन विश्वनाथ की कृपा प्रसाद का सुपरिणाम ही इस दिव्य अनुष्ठान को 700 दोहों के रूप में पूर्ण कराते हुए सूक्ष्मागम सप्तशती के रूप में विद्वानों व रसज्ञ भक्तों तक पहुँचाने में समर्थ हो सका है।

यद्यपि प्रस्तुत तत्त्वगत भाव व्यवस्थाओं के अन्तर्गत आये कुछ तकनीकी शब्दों के कारण उनका भावानुवाद सुधी पाठकों को कुछ कठिन लग सकता है परन्तु उन मौलिक संश्लिष्ट शब्दों की मर्यादा भंग करना मुझ जैसे शब्द–साधक ने उचित नहीं समझा दूसरे इस प्रकार के तत्त्वग्रन्थों को पढ़ना और समझना जन सामान्य के न रूचि की बात है और न समझने की। इस प्रकार के अनुष्ठान परमशक्ति सत्ता के प्रीति–प्रसाद से ही पूर्ण होते रहे हैं। यह सप्तशती भी उसीके अनुकम्पाधीन पूर्ण हुई है। वीरशैव दर्शन के अनुयायी इसको हृदयंगम करते हुए मुझे अपने स्नेहाशीष से अभिसिंचित करेंगे, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

इस पवित्र ग्रन्थ के भावानुदन का अर्घ्य मैं उसके चिन्मयपात्र महान् विद्वान् पूज्य जगद्गुरू महास्वामी जी को ही त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये की भावना से समर्पित कर रहा हूँ। श्रद्धा–विश्वास रूपिणौ शिव–शिवानी सहित समस्त सृष्टि को संचालित करने वाली दिव्य सत्ताएं समस्त लोक का कल्याण करें इतिशम्।

विनयावनतः

वागीश 'दिनकर'

सुप्रवाल सर्वोदयनगर,
पिलखुवा– 245304 (हापुड़)
उत्तर प्रदेश

महाशिवरात्रिसंवत् 2079

चलित दूरभाष : 9837370278

सूक्ष्मागम (क्रियापाद) का प्रतिपाद्य

'सिद्धान्त' नाम से प्रसिद्ध कामिक आदि 28 आगमों के उत्तर भाग में वीरशैव मत का सविशेष प्रतिपादन हुआ है। भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश से श्री रेणुक, श्री दारूक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यो ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया। इन आचार्यो के द्वारा उपदिष्ट यह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों मे संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों के द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अतः श्री जगदगुरू पंचाचार्यो को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना जाता है।

वहाँ सिद्धान्त शैवागमों (10 शिवागम और 18 रूद्रागम) का परिचय देते हुए इनकी नामावली दी गई है और बताया गया है कि सूक्ष्मागम का शिवागमों में सातवाँ स्थान है इसी को सूक्ष्मतन्त्र भी कहते हैं। प्रस्तुत अंश उसका उत्तर भाग है। इसका केवल दस पटल वाला क्रियापाद ही उपलब्ध है। देवी और महेश्वर के संवाद के रूप में यह निबद्ध है। कैलास शिखर पर आसीन भगवती पार्वती प्रश्न करती हैं और भगवान् शिव उनका समाधान करते हैं। भगवती कहती हैं कि हे परमेश्वर! आप श्रुतियों और तन्त्रों का, अर्थात् निगम और आगम का सारा रहस्य जानते हैं। मैंने आपके मुख से अनेक तन्त्रों को सुना है, किन्तु इन सबको सुनने से मेरा चित्त चंचल हो उठा है अतः आप मेरे चित्त के समाधान के लिये सार रूप में कुछ कहने की कृपा कीजिये। उत्तर में भगवान् कहते हैं कि निगम, शास्त्र, पुराण, आगम तो अनेक हैं, किन्तु इनसे सम्यक् ज्ञान की जानकारी नहीं मिल पाती अतः परमार्थ वस्तु की जानकारी के लिये तुम्हें सूक्ष्मतन्त्र का उपदेश कर रहा हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो। इसके बाद परमेश्वर महान् परात्पर तत्व शिव का स्वरूप बताते हैं।

यहाँ भगवान् शिव के स्थाणु, सादाख्यपंचकातीत, षडध्वकर्ता और पशुपाशविमोचक—ये चार विशेषण हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करते हैं। कूर्मपुराण (1 ।10 ।39—40) में बताया गया है कि भगवान् शिव ने ब्रह्मा के मलिन सृष्टि की रचना के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वे अपने निश्चय पर अटल रहे, इसलिये उनको स्थाणु कहा जाता है। इसी प्रसंग में वहाँ (1 ।10 ।40—41) शिव के ज्ञान वैराग्य आदि दस अव्यय तत्त्वों की भी चर्चा की गई है। पाँच सादाख्य तत्त्वों से यह परशिव अतीत है। इनके कर्ता भगवान् शिव ही जीव रूप पशुओं को माया आदि पाशों से छुडाते हैं, अतः इनको पशुपाशविमोचक कहा जाता है।

इस प्रकार परात्पर शिवतत्त्व का स्वरूप बताकर आगे यहाँ प्रथम पटल में ही पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति नामक पाँच

शक्तियों का निरूपण कर बताया है कि एक ही शक्ति पाँच स्वरूप धारण कर लेती है। आगे निर्गुण शिव कैसे सगुण हो जाते हैं और उनसे सादाख्य तत्त्व की अभिव्यक्ति कैसे होती है? एक ही शिवतत्त्व द्विविध, त्रिविध और पंचविध कैसे हो जाता है? इन विषयों पर प्रकाश डालते हुए यहाँ इनके नाम और रूप का वर्णन करके शिवसादाख्य, अमूर्तसादाख्य, मूर्तसादाख्य, कर्तृसादाख्य और कर्मसादाख्य नामक पाँच सादाख्य तत्त्वों का स्वरूप विस्तार से बताया गया है। यहाँ (1 |21) स्पष्ट कर दिया गया है कि सगुण सदाशिव ही सादाख्य तत्त्व कहलाता है। पटल के अन्त में भगवान् की 25 लीलाओं की नामावली देकर कहा गया है कि मुक्ति की कामना करने वाले व्यक्तियों को एकमात्र शिव का ही सदा ध्यान करना चाहिये।

द्वितीय पटल के प्रारंभ में भगवती प्रश्न करती हैं कि आपने तो सभी तन्त्रों में पहले यह बताया था कि महादेव के अतिरिक्त इस संसार में दूसरा कोई नहीं। अब आप महेश्वर को जगत् का कारण बता रहे हैं और उनकी विभिन्न लीलाओं की भी चर्चा करते हैं। इसके उत्तर में महेश्वर कहते हैं कि यहाँ प्रथम पटल में वर्णित सभी स्वरूप मेरे ही हैं। परमात्मा के लीलारूप तो अनेक हैं, किन्तु उनमें से ये 25 रूप उपासना के लिये अधिक उपयोगी हैं। इतना कह कर भगवान् शिव इस पूरे पटल में इन लीलाओं का निरूपण करते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवता भगवान् की शक्तियों के ही विलास हैं। इससे बढ़कर या इनके बराबर अन्य कोई देवता नहीं हैं, अतः मुक्ति की कामना वाले व्यक्ति को एक मात्र शिव की ही शरण मे जाना चाहिये।

तृतीय पटल में मन्त्र का स्वरूप निरूपित है। सबसे पहले यहाँ 7 करोड़ मन्त्रों में शिव–मन्त्रों की श्रेष्ठता बताई है। शैव–मन्त्रों में एकादश मन्त्रों की, उनमें अघोर मन्त्र की तथा उसमें भी पंचाक्षर मन्त्र की श्रेष्ठता को बताते हुए कहा गया है कि इस पंचाक्षर मन्त्र से समस्त शास्त्रों की और देव–गन्धर्व आदि की सृष्टि होती है। इस प्रकार पंचाक्षर मन्त्र की महिमा को बताने के बाद यहाँ पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्रों के उद्धार की पद्धति प्रदर्शित है और पंचाक्षर मन्त्र के समान ही षडक्षर मन्त्र की भी महिमा गाई गई है। आगे मन्त्र का संक्षेप में विनियोग बता कर उनके प्रत्येक वर्ण के ऋषि, देवता, छन्द, स्वर, वर्ण, मुख आदि का निरूपण किया गया है। आगे करन्यास, अंगन्यास और षडंगन्यास का स्वरूप संक्षेप में बता कर शिव के ध्यान और पूजाविधि का वर्णन करते हुए त्रिविध जप का स्वरूप बताया है। आगम–तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में ही नहीं, मनुस्मृति जैसे स्मार्त ग्रन्थों में भी त्रिविध जप का उल्लेख मिलता है, किन्तु यहाँ का मानस जप का लक्षण सबसे विलक्षण हैं यहाँ जप की समाप्ति पर निर्याण मुद्रा का प्रदर्शन विहित है। प्रसंगवश मन्त्र के पुरश्चरण की विधि को संक्षेप में बता कर काम्य जप की विधि को बताते हुए पुनः षडक्षर मन्त्र की महिमा गाई गई है। आगे अक्षमाला (जपमाला) की निर्माण की विधि बता कर उस पर जप किस प्रकार किया जाय, उसका संस्कार कैसे किया जाय और उसको गुप्त कैसे रखा जाय, यह सब बता कर अन्त में पुनः पंचाक्षरी

विद्या एवं षडक्षरी मन्त्र की महिमा गाते हुए जप की महिमा का, उसकी गोपनीयता का और योग्य शिष्य को ही इस पूरी विधि का उपदेश देने का निर्देश किया गया है। इस प्रकार सूक्ष्मागम का यह तृतीय पटल मन्त्र और जाप सबन्धी महत्वपूर्ण सामग्री से समृद्ध है।

चतुर्थ पटल में षडक्षर मन्त्र के रहस्य को स्पष्ट किया गया है सर्वप्रथम यहाँ साकल्य, शांभव, सौख्य, सावश्य और सायुज्य नामक पाँच प्रणवों का निरूपण किया गया है। गणेशसहस्रनाम के 'पञ्चप्रणवभावितः' इन नाम में पाँच प्रणवों की चर्चा आई है किन्तु उनका वास्तविक स्वरूप हमें यहीं देखने को मिलता है। षडक्षरी मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करते हुए यहाँ पाँच प्रणवों की उद्धार–विधि को बता कर उनके स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। यह भी बताया गया है कि पंचाक्षर मन्त्र ही प्रणव से युक्त होने पर षडक्षर मन्त्र कहलाता है। आगे षडक्षर मन्त्र की षट्तत्त्वरूपता, षट्स्थलरूपता, षड्लिंगरूपता आदि का विवरण देते हुए कहा गया है कि षडात्मक यह सारा जगत् षडक्षर मन्त्र से प्रसूत है। पुनः षडक्षर और पंचाक्षर मन्त्र की महिमा को बता कर अन्त में इस मन्त्र के अधिकारी के लक्षणों का स्पष्ट निरूपण किया गया है।

पंचम पटल में गुरू और शिष्य का स्वरूप प्रदर्शित है। यहाँ प्रथमतः गुरू के लक्षणों को बता कर उनके प्रभाव का वर्णन किया गया है और बताया गया कि गुरू के शरीर में समस्त तीर्थों की स्थिति है। पशु, पति और पाश का संक्षिप्त स्वरूप बता कर यहाँ कहा गया है कि पाशों से आबद्ध पशुओं को उनसे छुटकारा पाने के लिये गुरू का सहारा लेना चाहिये। यहाँ विशेष रूप से इस बात का निर्देश किया गया है कि एक परिवार का एक ही गुरू होना चाहिये। आगे शिष्यका लक्षण बता कर कहा गया है कि शिष्य की परीक्षा कर गुरू को उसे शिवाचार का उपदेश करना चाहिये। भस्म और रूद्राक्ष के धारण की पद्धति की यहाँ संक्षेप में चर्चा है और कुछ न्यासों का भी उल्लेख है। इसके बाद इष्टलिंग के संस्कार की पद्धति बता कर अन्त में वीर माहेश्वर के आचार और निष्ठा का गंभीर विवेचन किया है तथा कहा है कि ऐसा करने से व्यक्ति के जन्म–जन्मान्तर के संचित एवं प्रारब्ध कर्म भी तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

छठे पटल के प्रारंभ में देवी लिंगतत्त्व के स्वरूप की जिज्ञासा करती हैं और पूँछती हैं कि इष्टलिंग की पूजा कैसे की जाती हैं और उसका फल क्या है? इस उत्तर में भगवान् शिव नाद, बिन्दु और कला का स्वरूप बता कर कहते हैं कि लिंगतत्त्व नाद–बिन्दु–कला स्वरूप है। लिंग पद की निरूक्ति को बताते हुए वे यहाँ उसकी महिमा का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि यह सारी सृष्टि उससे ही उद्भूत है और उसी में लीन हो जाती है। शिवतत्त्व का विवेचन करने के बाद यहाँ लिंगार्चन की आन्तर पद्धति को बता कर कर्म तप, जप, ध्यान और ज्ञान नामक पाँच यज्ञों का स्वरूप वर्णित है। बाह्य पूजा की अपेक्षा यहाँ अन्तर्याग का महत्व प्रदर्शित है। आगे वीरशैवों के लिये इष्टलिंग की करपीठ पर पूजा के तथा

प्राणलिंग और भावलिंग की पूजा के क्रम को भी कह कर अष्टोपचार अथवा पंचोपचार पूजा का बाह्य विधान बताया गया है। इसके बाद यहाँ वीरशैव का लक्षण, बताते हुए उपदिष्ट है कि वह किस क्रम से षट्स्थलों की उपासना करे। अन्त में लिंगार्चन के फल को बता कर शिवलिंग की निन्दा के दोषों को गिना कर कहा है कि शिवलिंग का पूजक लोक में श्रेष्ठ पुरूष माना जाता है।

शिवपूजा के क्रम को सुनने के बाद सातवें पटल में देवी जिज्ञासा करती हैं कि वीरशैवों के अतिरिक्त अन्य कितने प्रकार के शैव होते हैं? उनकी मोक्षप्रद आचार–पद्धति कैसी होती है? इसके उत्तर में भगवान् शिव ने प्रथमतः अनादिशैव, आदिशैव, महाशैव, अनुशैव, अवान्तरशैव, प्रवरशैव और अन्त्यशैव नामक सप्तविध शैवों के लक्षण बताये हैं। आदिशैवोंके विषय में यहाँ बताया है कि ये कौशिक, कश्यप, भरद्वाज, अत्रि और गौतम नामक पाँच ऋषियों के वंशज हैं। परार्थ पूजा का अधिकार इन्ही को है। शैवों के ये भेद आचारभेद के कारण हैं। इतना बताने के बाद यहाँ वीरशैवों के भी सामान्य, विशेष और निराभार नामक तीन भेदों का लक्षण बता कर लिंगनिष्ठा का महत्व बताया है और इसी प्रसंग में कहा है कि इष्टलिंग का शरीर से वियोग कभी नहीं होना चाहिये। इष्टलिंग का पुनः संस्कार किस सिथति में हो सकता है और किन स्थितियों में यह संभव नहीं है, इसका खुलासा करते हुए यहाँ बताया गया है कि इष्टलिंग, गुरू, जंगम आदि की सेवा में अपने प्राणों को भी समर्पित कर देने वाला विशेष वीरशैव कहलाता है। आगे निराभारी वीरशैव के स्वरूप और उसकी चर्या का वर्णन कर उसके लिये अत्याश्रमी और अतिवर्णाश्रमी जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। अन्त में जंगम की और लिंगाराधन की महिमा को बता कर कहा है कि यह अतीव गोपनीय विषय है। अयोग्य व्यक्ति को इसका उपदेश न कर योग्य व्यक्तियों को ही इसकी प्रक्रिया बताना चाहिये।

आठवें पटल में देवी के लिंगांग संबन्ध विषयक प्रश्न का समाधान किया गया है। भगवान् शिव कहते हैं कि षट्स्थलों के सम्यक् ज्ञान से यह संभव है। प्रथमतः यहाँ आचार, गुरू, शिव, चर, प्रसाद और महालिंग नामक षड्विध लिंगों के नाम गिना कर बाद में प्रत्येक लिंग के तीन तीन भेदों का, अर्थात् आचारलिंग के सदाचार, नियताचार और गणाचार का गुरूलिंग के दीक्षा, शिक्षा और अनुभाव का, शिवलिंग के इष्ट, प्राण और भाव का, चरलिंग के स्वयं, चर और पर का, प्रसाद लिंग के शुद्ध, सिद्ध और प्रसिद्ध का तथा अन्तिम महालिंग के पिण्डज, अण्डज तथा बिन्द्वाकाश नामक भेदों का लक्षण बताया गया है। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती हैं कि इन सब लिंगों की पूजा कैसे की जाती है, इसकी विधि क्या है और उससे क्या फल मिलता है? उत्तर में भगवान् शिव भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य नामक छः अंगस्थलों के नाम बताकर पुनः इनका लक्षण बताते हैं। इसके बाद गुरूभक्त, पूजक, वीर, प्रसादवान् और प्राणी नामक छः प्रकार के भक्तों का और फिर इसी पद्धति से गुरूलिंग, शिवलिंग, चरलिंग,

प्रसादलिंग और महालिंग के भी छः छः प्रकार के भक्तों का लक्षण बता कर कहा गया है कि इस प्रकार लिंगस्थलों की संख्या 36 हो जाती है। इनमें भक्त को विभिन्न अंगों में इष्टलिंग आदि षड्विध लिंगों की स्थिति को बताते हुए एक के बाद दूसरे के क्रम से महालिंग स्वरूप तक पहुचने के क्रम को दिखा कर अन्त में कहा है कि लिंग और अंग के संबन्ध का यह ज्ञान गुरू के द्वारा उपदिष्ट पद्धति से ही प्राप्त किया जा सकता है।

लिंग और अंग के परस्पर के संबन्ध को जान लेने के बाद नवें पटल में देवी भक्तों के माहात्म्य को जानने की इच्छा प्रकट करती हैं। उत्तर में भगवान् शिव कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम नामक चतुर्विध भक्तों का उल्लेख कर कहते हैं कि आचार के भेद से यह होता है। आगे मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम भक्तों के पुनः तीन भेदों को बता कर कहा गया है कि प्राणलिंग की उपासना करने वाले वीरशैव ही उत्तमोत्तम वृत्ति के कारण उत्तमोत्तम भक्त कहलाते हैं। यहाँ देवी भक्तों के लक्षण, उनकी वृत्ति और गुणों के विषय मे प्रश्न करती हैं और भगवान् सर्वप्रथम विस्तार से भक्तों के लक्षणों का वर्णन कर उनकी महिमा का भी गान करते हैं। अन्त में यहाँ वीरशैवों की श्रेष्ठ भक्तों में गणना की गई है और कहा गया है कि भगवान् भी इन भक्तों के अधीन रहते हैं। भक्तपद की व्युत्पत्ति को बताते हुए यहाँ भक्तों के सारा द्रोह करने से और उनकी सेवा करने से क्या कुफल या सुफल मिलता है, इसका निरूपण कर ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस सूक्ष्म तन्त्र में अब तक जो कुछ बताया गया है, उससे बढ कर दूसरा कोई ज्ञान सभी प्रकार की सम्पत्ति को देने वाला नहीं है।

मोक्षमार्ग के एकमात्र साधन इस ज्ञान को सुन कर अन्तिम 10वें पटल में देवी भगवान् शिव की स्तुति करती हैं। यहाँ भगवान् शिव के पंचब्रह्ममय स्वरूप का, तत्वातीत एवं तत्वमय स्वरूप का तथा प्रथम और द्वितीय पटल में वर्णित शिवलीलाओं का स्तुति के व्याज से वर्णन करते हुए ईश्वर का परित्याग कर देने वाले शिप्र जनों का भी उल्लेख किया है। समस्त वेद, समस्त देवगण शिव के ही अनुचर हैं। इस समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और विनाश के कारण शिव ही हैं। भगवान् शिव की इस विशेषता पर भी यहाँ प्रकाश डाला गया है कि समस्त अमंगलों के साथ रहते हुए भी आप समस्त मंगलों के प्रदाता हैं। अन्त में भगवती अपनी चपलता को क्षमा कर देने के लिये कहती हैं। इस स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् शिव पार्वती से वर मांगने को कहते है। भगवती सुदृढ भक्ति का वर माँगती हैं। भगवान् शिव इस सुदृढ भक्ति के अतिरिक्त दूसरा वर भी देते हैं कि भगवती द्वारा गाई गई इस स्तुति का जो भक्तिभाव से पाठ करेगा, वह षट्स्थल के ज्ञान से सम्पन्न हो जायगा। अन्त में शास्त्र की गोपनीयता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है और इसी के साथ यह दस पटल वाला सूक्ष्मागम के उत्तर भाग का क्रियापाद समाप्त होता है।

मूलपञ्चाक्षरमन्त्रन्यासाः

ॐ नमः शिवाय इत्यस्य श्रीमूलपञ्चाक्षर महामन्त्रस्य वामदेव ऋषिः (शिरसि), पङ्क्तिश्छन्दः (मुखे), श्री सदाशिवो देवता (हृदये), ॐ बीजम्, उमा शक्तिः (गुह्ये), शिव इति कीलकं (पादयोः), श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

सृष्टिन्यासक्रमः (ब्रह्मचारिणाम्)

करन्यासः

ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

देहन्यासः

ॐ यं ॐ ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ वां ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ शिं ॐ अघोराय नमः हृदये ।
ॐ मं ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ नं ॐ सद्योजाताय नमः पादद्वये ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नमः सर्वा ।

अङ्गन्यासः

ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने कवचाय हुँ ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।

स्थितिन्यासक्रमः (गृहस्थानाम्)

करन्यासः

ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृतिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

देहन्यासः

ॐ शिं ॐ अघोराय नमो हृदये ।
ॐ वां ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ यं ॐ सद्योजाताय नमः पादद्वये 1
ॐ नं ॐ ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ मं ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नमः सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यासः

ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।
ॐ नं ॐ अशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।

संहारन्यासक्रम : (वानप्रस्थसंन्यासिनाम्)

करन्यासः

ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

देहन्यासः

ॐ नं ॐ सद्योजाताय नमः पादद्वये ।
ॐ मं ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ शिं ॐ अघोराय नमो हृदये ।
ॐ वां ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ यं ॐ ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नमः सर्वा ।

अङ्गन्यासः

ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं ।
ॐ वां ॐ नित्यतृतिशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।
ॐ यं ॐ. सर्वज्ञशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।

प्रथमः पटलः

कैलासवर्णनम्

श्रीमत्कैलासशिखरे नानाद्रुमविराजिते।
नानापक्षिसमाकीर्णे नानामृगसमाकुले॥1॥

बहुभाँतिक खग–मृग–विहग, तरूवर, लता–प्रतान।
आदिक से सम्पन्न था, गिरि कैलास महान।।1।।

सिद्धचारणगन्धर्वयक्षरक्षोगणैर्वृते ।
ब्रह्मादिभिर्देवगणैरिन्द्राद्यैर्लोकपालकैः ॥2॥

जहां सिद्ध, चारण, असुर देव, यक्ष, गन्धर्व।
लोकपाल–गण सँग समुद, रजते आनँद पर्व।।2।।

योगिभिः सनकाद्यैश्च मुनिवर्यैः शुकादिभिः।
नन्द्यादिप्रमथानां च गणैः संसेविते शुभे॥3॥

सनक आदि योगीप्रवर, शुकदेवादि मुनीश।
प्रमथगणाधिप रूप में नन्दी–सदृश वरीश।।3।।

सारूप्यादिपदं प्राप्तैर्महाभागैर्विराजिते।
नानारत्नमये दिव्ये सुखैकफलदायके॥4॥

सारूप्यादिक मुक्ति की, पावन पदवी युक्त।
मूल्यवान मणि–माणिकों, रत्नों से संयुक्त।।4।।

विभ्राजते महाश्रृङ्गं सौवर्णं दिव्यमन्दिरम्।
रत्नस्तम्भसहस्त्राढ्ये तत्रस्थे मणिमण्टपे॥5॥

मन्दिर इस गिरि–शिखर पर यक था रम्य प्रकार।
जिसमें स्वर्णस्तम्भ थे, निर्मित एक हजार।।5।।

सिंहासने समासीनं ब्रह्मेन्द्रादिसुरैर्वृतम्।
पप्रच्छ पार्वती देवी शङ्करं लोकशङ्करम्॥6॥

आसन पर राजित जहाँ, थे अज, सुर, सुर–पाल।
वहां पूछ बैठी शिवा, शिव से एक सवाल।।6।।

देव्युवाच

भगवन् देवदेवेश सर्वज्ञ परमेश्वर।
त्वमेव श्रुतितन्त्राणां तत्त्वं जानासि शङ्कर॥7॥

हे शंकर सर्वज्ञ! हे परमेश्वर, देवेश!
तुम रखते श्रुति, तन्त्र का तत्वज्ञान अशेष।।7।।

त्वन्मुखाम्भोजनिष्यन्दिसूक्तिधारामृतं प्रभो।
पीत्वा श्रोत्रपुटाभ्यां तु तृप्तिर्मे नहि जायते॥8॥

सूक्ति–सुधा मुख–कमल की, यदपि मिली भरपूर।
श्रोतृ–पुटों से किन्तु है, तृप्ति अभी तक दूर।।8।।

विविधानि च तन्त्राणि श्रुतानि बहुधा मया।
तथापि चञ्चलं चित्तं बहुश्रवणकारणात्॥9॥

अनेकधा रममय सुनी, तन्त्रों की झंकार।
इस चंचल मन को लगी, नवीनता हर बार।।9।।

तस्मात् संगृह्य सारांशं मोक्षमार्गैककारणम्।
सम्यक् तत्त्वं विनिश्चित्य कारुण्याद्वद मे प्रभो॥10॥

कृपा–सिन्धु! करके कृपा, हरकर हर अज्ञान।
साररूप में दीज़िए, मुझे मोक्ष का ज्ञान।।10।।

महेश्वर उवाच

सत्यमेतन्महादेवि यदुक्तं हि त्वयाऽनघे।
अनन्ता निगमाः प्रोक्ताः शास्त्राणि विविधानि च।
अमितानि पुराणानि विरुद्धानि परस्परम्॥11॥

सत्य, शिवे! तुमने कहा, बोले, विहँस, महेश।
निगम, शास्त्र मिस हैं दिये, मैंने बहु उपदेश।।11।।

आगमा बहुधा प्रोक्ताः समस्तार्थावबोधकाः।
एतैरन्योन्यभिन्नैश्च ज्ञानं सम्यङ् न जायते॥12॥

तथ्य विविध ढँग के करें, उनमें भ्रान्ति प्रसूत।
जिससे होती चित्त को अति अशान्ति अनुभूत।।12।।

तस्मात् सर्वार्थसंयुक्तं परमार्थावबोधकम्।
सूक्ष्मतन्त्रमहं वक्ष्ये शिवज्ञानैकसाधनम्।
समाहितेन मनसा तन्त्रं गोप्यमिदं शृणु॥13॥

सूक्ष्म तन्त्र का इसलिए, देता गोपन ज्ञान।
परमार्थी इस तन्त्र को सुनो, देवि! दे ध्यान।।13।।

परात्परतरः शिवः

अस्ति कश्चित् स्वतः सिद्धः सच्चिदानन्दलक्षणः।
नित्यो निरञ्जनः शुद्धो निर्मलो निरुपप्लवः॥14॥

स्वतः सिद्ध सत्, चित् विमल, शुद्धानन्दस्वरूप।
पूर्व रहा है सृष्टि के, कोई तत्व अनूप।।14।।

निर्गुणो नित्यसम्पन्नो निर्मायो निरुपाधिकः।
अकायो भक्तकायश्च परात्परतरः शिवः॥15॥

माया, देह, उपाधि से, रहित, सत्व-संपन्न।
देख जिसे रक्षार्थरत, होते भक्त प्रसन्न।।15।।

एको रुद्रः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः।
पुरुषः शाश्वतः स्थाणुरूर्ध्वरेतास्त्रियम्बकः॥16॥

ज्योतिरूप, शाश्वत पुरुष, रुद्रस्थाणु अदीन।
ऊर्ध्व रेत, परमात्म यह, नेत्र धारता तीन।।16।।

सादाख्यपञ्चकातीतो वेदवेदान्तगोचरः।
षडध्वकर्ता देवेशः सर्वतत्त्वोपरि स्थितः॥17॥

सृष्टा श्रेष्ठ षडध्व का, आख्य पंचकातीत।
वेद्य वेद-वेदान्त से, तत्वों का नवनीत।।17।।

एवंरूपः परात्मा हि पशुपाशविमोचकः।
शम्भुः कदाचिन्निजया प्रकृत्या लीलया स्वयम्॥18॥

प्रकृति-पुरुष-सा यह कभी, बनता लीलाधाम।
पशुओं के भी पाप हर, उन्हें करे अभिराम ।।18।।

सृष्ट्यर्थं सर्वतत्त्वानां जगदुत्पत्तिकारणम्।
योगिनामुपकाराय स्वेच्छयाऽचिन्तयच्छिवः॥19॥

तत्वों की उत्पत्ति की चिन्ता हुई सवार।
योगि-जनों हित शिव लगे, करने सोच विचार।।19।।

पञ्च शक्तयः

ध्यायमानात् ततो देवि परा शक्तिरजायत।
आदिशक्तिस्ततो जाता पराशक्त्यंशभेदतः॥20॥

चिंतित उस शिव से हुई पराशक्ति सम्भूत।
इसकी ही थीं अंशजा, आद्या शक्ति अनूप।।20।।

आदिशक्त्यंशतः साक्षादिच्छाशक्तिरजायत।
इच्छाशक्त्यंशभेदेन ज्ञानशक्तिरजायत॥21॥

आदिशक्ति के अंश से उपजी इच्छा-शक्ति।
ज्ञान-शक्ति प्रसवा बनीं, जो सहेज अनुरक्ति।।21।।

ज्ञानशक्त्यंशभेदेन क्रियाशक्तिरजायत।
एकैव पञ्चधा भिन्ना निर्मला शिवचिन्तया॥22॥

क्रिया- शक्ति के रूप फिर, सृजा ज्ञान का अंश।
यूं एकल शिवशक्ति के बने पांच अवतंस।।22।।

पञ्चविधं सादाख्यं तत्त्वम्

शिवस्तु सच्चिदानन्दलक्षणः परमेश्वरः।
पूज्यपूजकभावेन निर्गुणः सगुणोऽभवत्॥
स च पञ्चविधः प्रोक्तः सादाख्यादिप्रभेदतः॥23॥

निर्गुण, सगुण-स्वरूप रख, लेते शिव आकार।
जिनको चिति, सादाख्यगत, लखतीं पंच प्रकार।।23।।

पराशक्त्यादिशक्त्योश्च बिन्दुनादस्वरूपयोः।
मेलने शिवतत्त्वस्य सादाख्यं समजायत॥24॥

सृजा तत्व सादाख्य जब, मिली परा सँग आदि।
बिन्दु, नाद नाम्नी रहीं जिनमें निहित उपाधि।।24।।

प्रथमं शिवसादाख्यममूर्तं तु ततोऽभवत्।
ततः समूर्तसादाख्यं ततो वै कर्तृनामकम्।
कर्मसादाख्यमपरं पञ्चसादाख्यमीरितम्॥25॥

कर्तृ, मूर्त, शिव, कर्म के सँग अमूर्त अभिराम।
ये पांचों जाने गये सादाख्यों के नाम।।25।।

सदाशिवेशब्रह्मेश - ईश्वरेशानभेदतः।
मूर्तयो वै मता देवि सादांख्यापरनामकाः॥26॥

ईश्वर, ब्रह्मा, सदाशिव, ईश और ईशान।
पंचमूर्त सादाख्य की है तात्विक पहचान।।26।।

त्रिविधं शिवतत्त्वम्

तदेतत् त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं परं तथा।
लिङ्गमूर्त्यादिभेदेन दृश्यं स्थूलमिति स्मृतम्।
योगिभिर्ज्ञानदृष्ट्या यद् ध्येयं तत् सूक्ष्ममुच्यते॥27॥

सूक्ष्म, स्थूल, पर रूप में त्रिविध बना शिव तत्व।
लिंग, मूर्ति के भेद से, व्यापक हुआ महत्व।।27।।

नित्यं सत्यं चिदानन्दमव्ययं केवलं सुखम्।
यद्रूपं तत्परं ज्ञेयं भक्तैः षट्स्थलवर्त्मभिः॥28॥

क्षरण और क्षति से रहे जो सर्वदा विमुक्त।
पर अभिधानी सत्व सत्, नित्य, चिदानँद–युक्त।।28।।

सगुणनिर्गुणभेदेन द्विविधम्

निर्गुणः शिव इत्युक्तः सगुणस्तु सदाशिवः।
सादाख्यश्च स एवोक्तो ध्यानपूजादिकारणम्॥29॥

सगुण सदाशिव रूप है, निर्गुण है शिवरूप।
यही सगुण सादाख्य है, पूजन योग्य, अनूप ।।29।।

देही निर्गुण इत्युक्तो देहः सगुण उच्यते।
एवमेव विजानीयाद् द्वयोर्भेदो न विद्यते॥30॥

आत्मा निर्गुण, तन सगुण, जैसा लें संज्ञान।
भेदहीन सादाख्य ये, समझें तत्व महान।।30।।

नादरूपः शिवः प्रोक्तो बिन्दुरूपः सदाशिवः।
नादबिन्दुयुतं रूपं ध्यानपूजादिकारणम्॥31॥

बिन्दु युक्त है सदाशिव, नादयुक्त शिवरूप।
पूजन–भजनों में रहें सँग, ज्यों छाया, धूप ।।31।।

ततश्च पञ्चसादाख्यभेदं शृणु वरानने।
एतत्सर्वं तत्स्वरूपं दृश्यादृश्यं विशेषतः॥32॥

सुनो, सुमुखि सादाख्य के यही पाँच हैं हेतु।
जो अदृश्य या दृश्य बन, फहराते जय–केतु।।32।।

शिवसादाख्यलक्षणम्

शान्त्यतीतकलायुक्तं पराशक्तिसमुद्भवम्।
प्रसन्नं सूक्ष्मरूपं च विद्युत्प्रभमनूपमम्।
शुद्धं च शिवसादाख्यं सर्वतत्त्वालयं परम्॥33॥

अनुपमेय, विद्युत–सदृश, शिव सादाख्य कहाय।
सूक्ष्म, कला, शुचिरूप धर, सबकी करे सहाय।।33।।

शान्त्याख्यकलया युक्तमादिशक्तिसमुद्भवम्।
अमूर्तं केवलं लिङ्गं भानुकोटिप्रकाशकम्॥34॥

कोटिक सूर्यों को करे, जिसका बल, द्युतिमान।
लिंगरूप यह तत्व हीं ज्योतिस्तंभ समान।।34।।

तेजः स्तम्भायमानं स्यादमूर्तत्वादगोचरम्।
ज्योतिर्लिङ्गं परं साक्षाद् ध्येयं शुद्धेन चेतसा॥35॥

ज्योतिर्लिंगी रूप है, शुद्ध चित्त से ध्येय।
अगम, अतीन्द्रिय रह सदा, देता जो पाथेय।।35।।

मूर्तसादाख्यलक्षणम्

विद्याकलासमायुक्तमिच्छाशक्तिसमुद्भवम् ।
मूर्तं मूर्तिधरं दिव्यं ज्वलदग्निसमप्रभम्॥36॥

जातक इच्छा–शक्ति का तत्व मूर्त सादाख्य।
दीप्ति, कला, विद्यादि युत्, ज्योतिर्लिंग उपाख्य।।36।।

लिङ्गरूपं चैकवक्त्रं नेत्रत्रयविराजितम्।
सर्वावयवसम्पूर्णमेवं ध्येयं शुभावहम्।।37।।

एकमुखीं त्रयनेत्रधर, सर्व अंग शुभ रूप।
ध्यान–साधकों को करें, दान समृद्धि अनूप।।37।।

कर्तृसादाख्यलक्षणम्

प्रतिष्ठाकलया युक्तं ज्ञानशक्तिसमुद्भवम्।
दिव्यलिङ्गं महादीर्घं स्फटिकाभं सदोज्ज्वलम्।।38।।

स्फटिक–आभ ज्ञानांश यह, लिंगी रूप प्रतिष्ठ।
कर्तमान सादाख्य शुभ, महदाकार बलिष्ठ।।38।।

तन्मध्ये संस्थिता मूर्तिरीश्वरः सर्वकारणम्।
चतुःशीर्षं चतुर्वक्त्रं चतुर्वर्णसुशोभितम्।।39।।

ईश जहाँ मध्यस्थ है, अखिल जगत हो हेतु।
चतुरानन–शिर, वर्ण–युत् स्रोत–समन्वय–सेतु।।39।।

नेत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं श्रोत्रैरष्टभिरञ्चितम्।
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्तं पादद्वयविराजितम्।।40।।

बारह लोचन, पाँव दो, और श्रोतृ–भुज आठ।
क्षमता, भाव, प्रभाव में निपट निराले ठाठ।।40।।

त्रिशूलं परशुं चैव खड्गं चाभयमेव च।
दीप्यमानं स्वतेजोभिर्दधतं दक्षिणैः करैः।।41।।

खड्ग, परशु, त्रयशूल, अपि, अभयद दक्षिण हाथ।
तेज, ओज से जो सदा, दे भक्तों का साथ ।।41।।

पाशं नागं तथा घण्टां वरदं वामतः प्रिये।
हस्तैश्चतुर्भिर्दधतं सर्वावयवसुन्दरम्।
एवं तदैश्वरं रूपं लिङ्गं कर्त्रभिधानकम्।।42।।

वाम हस्त, मुद्रा वरद, पाश, नाग, वर घंट।
लिंग, कर्तसादाख्य यह, मेटे सारे टंट।।42।।

निवृत्तिकलया युक्तं क्रियाशक्तिसमुद्भवम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं लिङ्गं सृष्ट्यादिकारणम्।।43।।

क्रियाशक्ति, निवृतिक कला, नाद बिन्दु का सेतु।
लिंग तत्त्व, शिव शम्भु का, सृष्टि–सृजन का हेतु।।43।।

सर्वमन्त्रैकनिलयं पूज्यं देवासुरादिभिः।
क्रियाविशेषतत्त्वाख्यं कर्मरूपमुदीरितम्।।44।।

देवासुर–पूजित सभी, मन्त्रों का आगार।
कर्मनाम सादाख्य हर, कृतिमा का आधार ।।44।।

कुन्देन्दुस्फटिकाभासं जटाजूटविराजितम्।
शिरोभिः पञ्चभिर्युक्तं पञ्चाननसमन्वितम्।।45।।

स्फटिककुन्द पुष्पाभ सा, पंचानन छबिधाम।
पंचशीश पर राजते, जटाजूट अभिराम।।45।।

प्रत्याननं विशेषेण त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्।
दशभिर्बाहुभिर्युक्तं पादद्वयसुशोभितम्।।46।।

प्रति मुख चन्द्रकला सहित, धारे लोचन तींन।
दो पैरों, दशबाहु युत्, रूपाकार नवीन।।46।।

पद्मसंस्थं महादेवं सर्वाभरणभूषितम्।
दिव्यवस्त्रपरीधानं दिव्यायुधधरं शुभम्।।47।।

आयुधादि भूषण विविध, धार दिव्य परिधान।
सबके हितचिन्तक रहे, कमलासित भगवान।।47।।

शूलं च परशुं चैव खड्गं वज्राभये तथा।
दधतं दक्षिणैर्हस्तैस्तथा वामकरैः शुभैः।
नागं पाशं चाङ्कुशं च घण्टां वह्निं तथैव च।।48।।

खड्ग, परशु, मुद्रा अभय, शूल, वज्र ले हाथ।
आग, नाग, घंटाकुश, लिये पाश के साथ।।48।।

सर्वलक्षणसंयुक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
नानारूपधरं देवं विविधैर्लक्षणैर्युतम्॥49॥

फलदाता पुरूषार्थ के, विविध रूप आकार।
परम विलक्षण शम्भु शिव, जग के तारणहार।।49।।

अनेकलीलानिलयं कल्पितस्थानवाहनम्।
नृत्तगीतविनोदाढ्यं देवदेवं महेश्वरम्॥50॥

सुलभ भक्तजन के लिए, बहुविध लीलारूप।
जो मन–रंजन–हित करें, गायन, नृत्य अनूप।।50।।

जटाजूटसमायुक्तं त्र्यम्बकं नीललोहितम्।
पद्मासनसमासीनं ध्यायेदेवं महेश्वरम्॥51॥

भक्तों को यदि चाहिए, मनवंछित वरदान।
जटाजूट प्रभु का करें, सच्चे मन से ध्यान।।51।।

पञ्चविंशतिलीलानामानि

आदौ तस्य स्वयं लीलाः पञ्चविंशतिभेदतः।
सृष्टिस्थित्यन्तकरणास्ताः श्रृणु क्रमशोऽधुना॥52॥

लीला विधि पच्चीस की, चिति धारे जो कोय।
सृष्टिस्थिति, संहार की, गति से परिचित होय।।52।।

शशिचूडमुमाकान्तं वृषारूढं च ताण्डवम्।
वैवाहं च तथा भिक्षाटनं कामाङ्गनाशनम्॥53॥

उमाकांत, शशिचूड़ अपि, वृषारूढ़, वैवाह।
ताडंव, कामसँहार सँग, भिक्षाटन वर वाह।।53।।

कालसंहरणं चैव पुरत्रयविनाशनम्।
जलन्धरवधं चैव ब्रह्मदर्पनिवारणम्॥54॥

जालन्धरवध, त्रिपुरहर, लीला काल–सँहार।
ब्रह्मा–दर्प–निवारणी, पोषक अमित, अपार।।54।।

वीरभद्रावतरणं हरिध्वंसमतः परम्।
अर्धनारीश्वरं चैव किराताकारधारणम्॥55॥

वीरभद्र अवतरण अपि, किरातार्धनारीश।
हरिध्वंस लीला रची, गणपतिपितु गौरीश।।55।।

कङ्कालधारणं चैव चण्डेशानुग्रहं तथा।
विषापहरणं चैव चक्रदानं ततः परम्॥56॥

लीला पंचरधारणी, चक्रधार, विषपान।
चण्डेशानुग्रह–सदृश, जाने सकल जहान।।56।।

विघ्नेशवरदानं च सोमास्कन्दं तथैव च।
एकपादं ततो ज्ञेयं सुखावहमतः परम्॥57॥

सोमास्कन्दी, सुखावह, विघ्नेश्वर वरदानि।
एकपाद लीला सरूचि, विरची शूलक–पाणि।।57।।

दक्षिणामूर्तिरूपं च लिङ्गोद्भवमतः परम्।
पञ्चविंशतिलीलाभिर्देवदेवो महेश्वरः।
सृष्टिस्थितिलयाद्यैश्च विहारैः क्रीडतेऽनिशम्॥58॥

लिंगोद्भव लीला सहित विरच दक्षिणामूर्ति।
भक्तजनों में शम्भु, शिव, भरते दिव्यस्फूर्ति।।58।।

शिव एव सदा ध्येयः

अयमेव सदा ध्येयो यमाद्यष्टाङ्गसाधकैः।
पूज्यः सदा भक्तिनिष्ठैर्भवाम्बुधितितीर्षुभिः।
मन्तव्यो मननासक्तैर्मुमुक्षुभिरहर्निशम्॥59॥

अष्टांगों से दे प्रणति, निष्ठा सहित सुजान।
निरासक्त होकर करें निशिदिन प्रभु का ध्यान।।59।।

किमत्र बहुनोक्तेन स एव परमेश्वरः।
ततोऽधिकस्तत्समो वा देवो नास्ति वरानने॥60॥

सुमुखि, प्रयोजन व्यर्थ, दें और अधिक विस्तार।
परमेश्वर हैं यहीं शिव, जग के पालनहार।।60।।

एवमुक्तं समासेन तत्त्वं सिद्धान्तगोचरम्।
तव प्रीत्या महादेवि किं पुनः परिपृच्छसि॥61॥

महादेवि, समझा दिये, मैंने सारे तत्त्व।
और भला क्या वांछित, है जानना महत्व।।61।।

द्वितीयः पटलः

देव्युवाच

देवदेव विरूपाक्ष सर्वज्ञ करुणानिधे।
अहमेव महादेवो मत्तोऽन्यो नहि विद्यते॥1॥

विरूपाक्ष! करुणानिधे! हे प्रभु सर्वज्ञात।
महादेव, खुद को प्रथम बता रहे थे तात!॥1॥

इति सर्वेषु तन्त्रेषु पूर्वमुक्तं त्वयाऽनघ।
महेश्वर इति प्रोक्त इदानीं जगतां प्रभुः॥2॥

बता महेश्वर को रहे, हैं अब, स्वामी आप।
समझ नहीं पायी अनघ! ये सब क्रिया–कलाप॥2॥

को वा देवः स विश्वेशस्तस्य वै केन हेतुना।
रूपाणीमानि चित्राणि सञ्जातानि महात्मनः।
एतत्सर्वं समासेन श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥3॥

पूछ रही जिज्ञासु मैं, भला महेश्वर कौन।
सब यथार्थ बतलाइए, नहीं धारिए मौन॥3॥

महेश्वर उवाच

अथोच्यते महादेवि यत्त्वया परिशङ्कितम्।
संक्षिप्य कथ्यते सर्वं सादरं श्रूयतां प्रिये॥4॥

लो, मैं करता हूं प्रिये, शंका का परिहार।
आदरपूर्वक तुम सुनो, खोल बुद्धि के द्वार॥4॥

निर्गुणः सगुणश्च महेश्वरः

यो वै महेश्वर इति प्रोक्तः सर्वजगत्प्रभुः।
निर्गुणः सगुणश्चैव स एवाहं न संशयः॥5॥

सगुण–निर्गुणी रूप में जो वर्णित, विख्यात।
मैं हीं हूं वह महेश्वर, मानो मेरी बात॥5॥

रूपाणि सन्ति बहुशो देवस्य परमात्मनः।
तथाप्येतानि मुख्यानि तेषां कारणमुच्यते॥6॥

जो बतलाये थे पुरा, पच्चिस रूप अनूप।
उन भेदों से शम्भु के, बनते विविध स्वरूप॥6॥

1. शशिचूडलीला

व्योमकेशः शिवः प्रोक्तश्चन्द्रो व्योमाश्रितः सदा।
चन्द्रधारणमेतस्य नियतं खलु भामिनि॥7॥

जो शशि नभ में विचरता, रात–दिवस अविराम।
उस शशिधर का नाम है, व्योमकेश अभिराम ।।7।।

पुरा कल्पान्तरे चन्द्रोऽप्रीतो दक्षसुतासु च।
तदा दक्षेण चन्द्रस्तु शप्तो वै रोहिणीकृते॥8॥

दक्ष–सुताओं पर हुआ, चन्द्र एकदा रूष्ट।
शप्त किया, लख दक्ष ने रोहिणि–प्रियता, पुष्ट।।8।।

शापग्रस्तस्ततश्चन्द्रस्तपस्तेपेऽतिदारुणम् ।
शङ्करस्तपसा तस्य सन्तुष्टः प्राह चादरात्॥9॥

शापमुक्ति–हित चन्द्र ने, की कठोर तप–साध।
तब बोले शिव समुद्र, कर, कृपा–वृष्टि निर्बाध।।9।।

वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मि निशापते।
शापभीर्माऽस्तु ते लोकं प्रकाशय पुनः करैः॥10॥

हे निशिपति ! मैं कर रहा, तुम्हें शाप से मुक्त।
पुनः प्रकाशो जगत, हो, कर–निकरों से युक्त।।10।।

कृतार्थोऽस्मि महादेव दर्शनादेव ते प्रभो।
वरमन्यं न याचे मां भूषणत्वेन योजय॥11॥

शशि बोला वर दूसरा नहीं माँगता तात।
भूषणवत् धारण मुझे करें, निखारें गात।।11।।

एवं सम्प्रार्थितं चन्द्रं दधार शिरसा शिवः।
अनेन कारणेनासौ सोमधारीति गीयते॥12॥

तब शिव ने शशि धारकर, अपने शुभ्र ललाट।
किया सोमधर नाम से, और शिवत्व विराट ।।12।।

2. उमाकान्तलीला

सृष्ट्यर्थं जगतां देवो निष्कलः सकलोऽभवत्।
उमासहायतां प्राप्तस्तेन सोमः शिवः स्मृतः॥13॥

सकल धारते रूप प्रभु, तज निष्कल का रूप।
उभरे शिव जी नाम पा, अभिनव सोम अनूप ।।13।।

स शिवोऽहमुमा शक्तिस्त्वमेव परमेश्वरि।
त्वया सहाविनाभावात् सोमं मां परिचक्षते॥14॥

वह शिव मैं ही हूं स्वयं, उमारूप तुम शक्ति।
तुम बिन मैं कुछ भी नहीं, तुम मेरी अनुरक्ति।।14।।

3. वृषभारूढलीला

पुरा कल्पावसाने हि सर्वं संहृत्य शङ्करः।
कृत्वोमां साक्षिणीं तस्मिन्नेक एव चचार ह॥15॥

बना शिवा को साक्षी, और सुदृढ़ आधार।
विचरे शिव कल्पान्त में, कर जग का संहार।।15।।

दृष्ट्वा धर्मस्तथाभूतं सर्वसंहारकारणम्।
नाशयेन्मामिति भयात् तं रुद्रं शरणं गतः॥16॥

हुआ धर्म भयभीत अति, यह विनाश अवलोक।
प्राण बचाने, रुद्र के सम्मुख जा, दी ढोक।।16।।

अनुगृह्य तु तं देवो वाहनत्वे नियुक्तवान्।
तस्य नित्यत्वमाज्ञाप्य तेनाहं वृषवाहनः॥17॥

किया अनुग्रह शम्भु ने, दिया अभय वरदान।
वृषरूपी वाहन बना, रखा भक्ति का मान।।17।।

4. ताण्डवलीला

कल्पान्ते संहतं कृत्वा जगत् स्थावरजङ्गमम्।
ननर्त च महादेवः सुचिरं नृत्यलीलया।
तेन ताण्डवमूर्तित्वं जातं देवस्य शूलिनः॥18॥

अखिल विश्व संहार कर, नर्तन कर बहु काल।
ताण्डव-लीला रूप था, प्रकट किया विकराल।।18।।

5. वैवाहलीला

पुरा लोकहितार्थाय उमायाः परमेश्वरः।
हिमवद्दुहितुश्चक्रे पाणिग्रहणमादरात्।
तया च लीलया लोके वैवाहीत्युच्यते शिवः॥19॥

पर्वत-पुत्री से किया, जन-कल्यार्थ विवाह।
'वैवाही' के नाम से जोड़ा, भव-प्रवाह।।19।।

6. भिक्षाटनलीला

पुरा कल्पान्तरे ब्रह्मा मायया परिमोहितः।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तोऽन्यो नहि विद्यते॥20॥

मायामोहित ब्रह्म की बुद्धि हुई जब खिन्न।
दर्प ओढ़, समझे, नहीं, मुझसे कोन भिन्न।।20।।

इत्याद्यथर्ववाक्यानि जजल्पाऽहङ्कृतो विधिः।
तं दृष्ट्वा शङ्करः क्रुद्धो नखाग्रैरच्छिनच्छिरः॥21॥

अहंकारी अज–रूप लख, क्रुद्ध हुए गौरीश।
लिया तीक्ष्ण नख से त्वरित, काट ब्रह्म का शीश ।।21।।

शिरसस्तरसा तस्मात् प्रसस्त्रे रुधिरं बहु।
तेनैवाजकपालेन धृत्वा तद्रुधिरं पुनः॥22॥

बना शीश का ईश ने, पात्र–स्वरूप कपाल।
भर उसमें ही रक्त की, धारा ली तत्काल।।22।।

ललाटशिखिना चैतच्छोषयित्वा ततः शिवः।
तद्दाहशमनार्थं वैं भिक्षाटनमथाऽकरोत्।
ततो वै परमेशस्य लीला भिक्षाटनं गता॥23॥

सुखा, त्रिनेत्री अग्नि से, लिया उन्होंने रक्त।
भिक्षाटन कर, कर चले मुक्ति–कामना व्यक्त।।23।।

7. कामसंहारलीला

पुरा शक्त्या विरहितो ज्ञाननिष्ठोऽम्बिकापतिः।
तपश्चचार तत्काले देवैः सम्प्रेषितः स्मरः॥24॥

वैरागी बन जब चले, शम्भु गहन तप साध।
देवों ने भेजा मदन, काम–काम आराध।।24।।

आगत्य तपसो विघ्नमारेभे पुष्पसायकः।
तं दृष्ट्वा कुपितो देवो ललाटाग्निकणेन वै।
ददाह तेन लोकेऽभूत् कामारिरिति शङ्करः॥25॥

दृग तृतीय की अग्नि से भस्म हुआ रतिनाथ।
'काम–दहन लीला' यहीं, हुई विश्वविख्यात।।25।।

8. कालसंहारलीला

पुरा मृकण्डुतनयः स्वकीयायुः क्षयाद्भयात् ।
सर्वदेवान् परित्यज्य जगाम शरणं शिवम्॥26॥

आयु–क्षरण से भीत हो, मार्कण्डेय मुनीश।
हुए एकला शम्भु के शरणागत नतशीश।।26।।

अन्तकस्तमथो हन्तुमाजगामातिभीषणः।
कर्णमाबध्य पाशेन मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
चकर्ष किल तत्कालं देवः प्रत्यक्षतां गतः॥27॥

पाशबद्ध यमराज के, देख भक्त का हाल।
शरणागत वत्सल हुए, प्रकट वहां तत्काल।।27।।

शिक्षयित्वाऽन्तकं क्रूरं मार्कण्डेयमपालयत्।
कालारिरिति विख्यातो लोके तल्लीलया शिवः॥28॥

यथाउचित उपदेश दे, पुरी पठाये तात।
'काल–शत्रु' के नाम तब, शम्भु हुए विख्यात।।28।।

9. त्रिपुरसंहारलीला

त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽऽसीदतिदारुणः।
मायया निर्मितं तस्य विषमं च पुरत्रयम्॥29॥

त्रिपुर दैत्य ने ऋषि अगिन, किये त्रस्त, अति दीन।
मायाजनित प्रभाव से नगर बनाये तींन।।29।।

त्रिपुरं विष्णुबाणेन मेरुणा कार्मुकेण च।
निगमाश्वयुजा सूर्यचन्द्रचक्रवता तथा॥30॥

तब महेश, संयुक्त कर धनुष–बाण, रथ–चक्र।
हनने को वह दैत्य, कर चले भृकुटियां वक्र।।30।।

ब्रह्मसारथ्ययुक्तेन रथेन जितवान् शिवः।
त्रिपुरारीति तेनायं कथ्यते परमेश्वरः॥31॥

मान ब्रह्म को सारथी, रथ पर हुए सवार।
लीला रच, भगवान ने किया त्रिपुर–संहार।।31।।

10. जलन्धरवधलीला

पुरा जलन्धरो नाम राक्षसोऽभूत् सुदारुणः।
लोकत्रयं महादेवि बबाधे वरदर्पितः॥32॥

दुष्ट जलन्धर दैत्य ने पा प्रभु से वरदान।
मर्दित कर डाले अगिन, ऋषियों के अधिमान।।32।।

तथाविधं महादैत्यं पादाङ्गुष्ठकृतेन वै।
चक्रेणानाशयद्देवो ररक्ष च जगत्त्रयम्।
ततो हि प्रथितो लोके जलन्धरहरः शिवः॥33॥

चक्र बना तब दैत्य को, प्राण कर दिये विद्ध।
नाम 'जलन्धर–शत्रु' से, शंकर हुए प्रसिद्ध।।33।।

11. ब्रह्मदर्पनिवारणलीला

ब्रह्मा कदाचित् कामान्धः स्वसुतामेव कामयन्।
अन्यायवर्तनेनैव मृगो भूत्वाऽन्वधावत॥34॥

काम–अन्न ब्रह्मा हुए, पुत्री पर आसक्त।
रूप बदलकर काम की, तृषा कर चले व्यक्त।।34।।

तथाविधमजं दृष्ट्वा व्याधरूपो हरस्तदा।
विव्याध च महातीक्ष्णैस्तरसा तच्छिरः शरैः।
तस्मादजारिरित्येवमभूत् सर्वेश्वरो हरः॥35॥

मृगरूपी तब ब्रह्म का भंजित किया कपाल।
व्याधरूप 'ब्रह्मारि' ने, शान्त किया भूचाल।।35।।

12. वीरभद्रावतरणलीला

दक्षः प्रजापतिः पूर्वं शिवं त्यक्त्वाऽतिमोहितः।
हयमेधेन वै विष्णुं यष्टुं समुपचक्रमे॥36॥

केशव को आराधने जब थे चले सुजान।
दक्षराज थे कर चले, शिवजी का अपमान ।।36।।

वीरभद्राकृतिर्भूत्वा भद्रकालीप्रियः शिवः।
तथाविधस्य यज्ञस्य वैकल्यमकरोत् तदा।
वीरभद्रावतरणं तस्मात् प्रोक्तं पिनाकिनः॥37॥

अध्वर में जब हो गयीं, सती अचानक भस्म।
'वीरभद्र' बन शम्भु ने भंजित किया तिलस्म।।37।।

13. हरिध्वंसलीला

मत्स्यकूर्मवराहादिनारसिंहादिकान् पुरा।
अवतारान् महाविष्णोः संहृत्य परमेश्वरः॥38॥

मत्स्य, कूर्म, वाराह इति, आदि विष्णु अवतार।
पराभूत थे हो गये, शिव से विविध प्रकार।।38।।

तत्तत्कल्पेषु भूषां च तत्तदङ्गान्यकल्पयत्।
हरिध्वंसीति लोकेषु ततः ख्यातिं गतः शिवः॥39॥

अवतारों के अंश के भूषण धार अनूप।
महादेव जाने गये, 'हरि-ध्वंसी' समरूप।।39।।

14. अर्धनारीश्वरलीला

शरीरार्धं मया दत्तं प्रीत्या ते वरवर्णिनि।
ततो मामर्धनारीशं प्रवदन्ति विपश्चितः॥40॥

देकर आधा तन तुम्हें, बोल उठे गौरीश।
मैं कहलाया लोक में, प्रिये 'अर्धनारीश।।40।।

15. किराताकारधारणलीला

अनुग्रहाय शिष्टानां दुष्टानां निग्रहाय च।
अर्जुनस्य च रक्षार्थं किरातवपुषा शिवः।
चचार भुवि तेनायं किरातो रुद्र इत्यभूत्॥41॥

दुष्ट-हरण, सज्जन-भरण, बनी लक्ष्य की बात।
अर्जुन की रक्षार्थ प्रिय, मैं बन गया 'किरात'।।41।।

16. कंकालधारणलीला

पुरा त्रैविक्रमं रूपं स्वीकृत्य परमाद्भुतम्।
जित्वा बलिं महादैत्यमतिदृप्तोऽभवद्धरिः॥42॥

हर वामन के रूप में राजा बलि का राज्य।
अंहकार बना विष्णु तब, मुझको लगे विभाज्य ।।42।।

विजित्य तं महादेवः कङ्कालं तस्य सन्दधे।
तस्मात् कङ्कालधारीति विश्रुतः परमेश्वरः॥43॥

मैंने उनका वध किया, धार लिया कंकाल।
तब से 'कंकाली' मुझे कहता लोक विशाल।।43।।

17. चण्डेशानुग्रहलीला

पूर्वं चण्डाभिधं विप्रं पापिष्ठं पितृघातिनम्।
तमनन्यगतिं देवि रक्षयित्वा सदाशिवः॥44॥

विप्र चण्ड अति पातकी, जब हो गया हताश।
शरणागति का शम्भु ने दिया उसे आकाश।।44।।

ददावस्य गणेशत्वं सारूप्यं च ततः प्रिये।
चण्डेशानुग्राहकं च प्रवदन्ति शिवं बुधाः॥45॥

दीं गणपति पदवीं उसे, अरूणिम ह्रदय-प्रवेश।
तब कहलाये विश्व में, शिवशंकर 'चण्डेश'।।45।।

18. विषपानलीला

समुद्रमथनोद्भूतं गरलं चातिभीषणम्।
कृत्स्नं जगत्त्रयं दग्धुं ववृधे प्रलयाग्निवत्॥46॥

सागर-मंथन से हुआ कालकूट उत्पन्न।
गर्मी से होने लगे देव, दनुज अवसन्न।।46।।

तद्विषं चापि देवेशः कण्ठे धृत्वाऽखिलान् सुरान्।
ररक्ष च जगत्कृस्नं सदेवासुरमानुषम्।
कृपया शङ्करस्तेन विषसंहारकोऽभवत्॥47॥

तब सबके कल्याण हित, कर डाला विष-पान।
'विषसंहारी' रूप में हुए ख्यात भगवान।।47।।

19. चक्रदानलीला

जलन्धरवधार्थाय सृष्टं चक्रं सदाशिवः।
स्वपूजां कुर्वते नित्यं सहस्रकमलैः शुभैः॥48॥

चक्र जलन्धर से बना, चाहे थे श्रीनाथ।
सहसकमल से पूजते, नित्य झुकाकर माथ।।48।।

तथैकपुष्पलोपेन नेत्रार्पणविधायिने।
विष्णवे तद्ददौ चक्रं तस्माच्चक्रप्रदो हरः॥49॥

किया एक दिन विष्णु ने निजी नेत्र का दान।
चक्र उन्हें देकर हुए 'चक्रप्रद' भगवान।।49।।

20. विघ्नेश्वरदानलीला

विघ्नेशाय वरं दातुं प्रसादाभिमुखः शिवः।
आविर्भूतस्ततो देवो विघ्नेश्वरवरप्रदः॥50॥

जब गणेश शिव-इष्टि में बने कृपा के पात्र।
दे उनको वर शिव बने 'विघ्नेश्वर' वरदात्र।।50।।

21. सोमास्कन्दलीला

हिरण्याक्षसुतः पूर्वं बलवानन्धकासुरः।
दर्पितो वरदानेन बाधते स्म जगत्त्रयम्॥51॥

दुष्ट अन्धकासुर चला, कर जब वर पर गर्व।
त्रस्त कर चला नित्य प्रति, मनुज, देव, गन्धर्व।।51।।

भीता ब्रह्मादयो देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम्।
तदा प्रसन्नो देवेशः पार्वतीस्कन्दसंयुतः॥52॥

स्कन्द-शिवा के संग, तब प्रकट हुए शिव-शम्भु।
देख उन्हें झरने लगे, देवों के दृग-अम्बु।।52।।

अन्धकं तु विनिर्जित्य ररक्ष भुवनत्रयम्।
सोमास्कन्दस्ततः प्रोक्तः परमात्मा सदाशिवः॥53॥

जीत अन्धकासुर दनुज, त्रिभुवन किये अबन्ध।
तब से कहलाये गये, शिव जी 'सोमास्कन्द'।।53।।

22. एकपादलीला

पुरा कल्पान्तरे रुद्रो जगत् स्थावरजङ्गमम्।
संहृत्य लीलया देवश्चचारैकपदा प्रिये।
तेनैकपादरुद्रोऽभूत् सर्वात्मा परमेश्वरः॥54॥

किया एकदा रूद्र ने, संसृति का संहार।
'एकपाद' की, भ्रम, रचीं लीला अपरम्पार।।54।।

23. सुखावहलीला

अथ सर्वगतः शम्भुर्दयालुर्भक्तवत्सलः।
जगदाह्लादजनकं सर्वावयवसुन्दरम्॥55॥

विंसारते निंज कृपा से, सबके मनोविषाद।
सत्, शिव, सुन्दर भाव से प्रसारते आह्लाद।।55।।

रत्नकङ्कणकेयूरमकुटाद्यैरलङ्कृतम् ।
सर्वाभरणसंयुक्तं दिव्यमङ्गलविग्रहम्॥56॥

रत्नजटित टंकण, मुकुट, विविधाभूषण धार।
तन, मन के सौन्दर्य से, पूरित सभी प्रकार।।56।।

दधार परमं रूपं सुखैकनिलयं शिवः।
सुखावहस्तः प्रोक्तः शङ्करो लोकशङ्करः॥57॥

बांटा जग को सुख विपुल, धर स्वरूप अभिराम।
तब से शिव जी का पड़ा सुखद 'सुखावह' नाम।।57।।

दक्षिणामूर्तिलीला

योगिनामुपकाराय वीतरागः पुनः शिवः।
दक्षिणामूर्तिरूपेण वटमूलं समाश्रितः॥58॥

करने ऋषि–मुनि–जनों के, हर अभाव की पूर्ति।
स्थापित वट तरू–तल हुए, रूप 'दक्षिणामूर्ति' ।।58।।

करस्पुरत्पुस्तकाक्षमालान्यस्तनिजेक्षणः ।
ज्ञानोपदेष्टा सर्वेषां मुनीनामभवद् गुरुः॥59॥

अक्षमाल, पुस्तक लिये, शोभित दिखे महेश।
देते देव–समाज को हितकारी उपदेश ।।59।।

25. लिङ्गोद्भवलीला

पुरा दिव्यं महालिङ्गं कारणत्रयकारणम्।
शक्तिपीठसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम्॥60॥

त्रिविध कारणोंवश हुआ महालिंग उत्पन्न ।
शक्तिपीठ के संग कला, नाद-बिन्दु सम्पन्न ॥60॥

ध्यानपूजास्पदं चैवमुद्भूतं ज्योतिरात्मकम्।
तस्माल्लिङ्गोद्भवः प्रोक्तः शिवस्तु कमलानने।
एवमादिप्रभेदैश्च लीला बहुविधाः श्रुताः॥61॥

की इस ज्योतित रूप ने सकल अशिवता विद्ध।
'लिंगोद्भव' के नाम शिव जग में हुए प्रसिद्ध ॥61॥

ब्रह्माद्याः शिवस्यैव शक्तयः

स्वतन्त्रशक्तियुक्तस्य तस्य संकल्पमात्रतः।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे तदीयाश्चैव शक्तयः।
सम्भूताः कोटिसंख्याकास्तदाज्ञापरिपालकाः॥62॥

मात्र सुभग संकल्प से होती शक्ति प्रसूत ।
केशव, ब्रह्मा संग जिन्हें नमते हैं पुरहूत ॥62॥

तस्मात् सर्वात्मकं देवं महेशं मां विदुर्बुधाः।
अहमेव हि मन्तव्यो मन्त्रैः सर्वार्थसाधकैः॥63॥

इसीलिए सब शक्तियां महिम महेश्वर मान।
शिवजी के सम्मुख सदा, करतीं हैं प्रतिथान॥63॥

एतस्मादधिको देवि समो वा नहि विद्यते।
एवं शिवस्वरूपं ते कथितं मुक्तिदं मया।
जगदुद्धारनिरते किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥64॥

शिव के सम्मुख, हे शुभे! अन्य न कोई शक्ति।
और कहो, किस प्रश्न में, रखतीं हो अनुरक्ति॥64॥

✡✡✡

तृतीयः पटलः

देव्युवाच

मन्त्राः कतिविधा लोके साधकानां फलप्रदाः।
तेषु प्रशस्ता देवेश यावन्तः प्रचरन्ति वै।
एतत्सर्वं समासेन कृपया कथयस्व मे॥1॥

चर्चित जिनकी जगत में महिमा प्रभो ! महान।
मुझे दीजिए शीघ्र उन, सब मंत्रों का ज्ञान।।1।।

महेश्वर उवाच

सप्तकोटिमहामन्त्रा विद्यन्ते लोकपावनाः।
केचिन्मन्त्रा वैष्णवाश्च केचिच्छत्त्यधिदेवताः।
केचिद् वै क्षुद्रदैवत्याः केचिन्मत्प्रतिपादकाः॥2॥

विष्णु, शक्ति, शिव आदि की, ओर रहे जो मोड़।
प्रेयसि ऐसे मन्त्र हैं, जंग में सात करोड़।।2।।

तत्तन्मन्त्राभिमानिन्यः साधकानां हि देवताः।
फलं प्रददते देवि तद्भुक्त्वाऽऽयान्ति ते पुनः॥3॥

साधक– जन को मंत्र के, फल देते हैं देव।
जिन्हें भोग भव– चक्र में, वे आते स्वयमेव।।3।।

मन्त्रेषु शिवमन्त्राणां श्रेष्ठत्वम्

मदीयानां हि मन्त्राणां ये वै जापकसत्तमाः।
तेषामहं समुद्धर्ता जन्ममृत्युमहाभयात्।
मदीयानेव मन्त्रांश्च जपेत् तस्माद्विचक्षणः॥4॥

साधक जपते मन्त्र जो, बना मुझे आधार।
जन्म–मृत्यु से मैं करूं, उनका बेड़ा पार।।4।।

मन्त्राणामपि शैवानां मुख्या एकादश स्मृताः।
तत्राघोरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टप्रदो नृणाम्॥5॥

शिव के मंत्रों–मध्य में, ग्यारह मुख्य, प्रसिद्ध।
इच्छाओं की पूर्ति में है अघोर अति सिद्ध।।5।।

तस्मादपि श्रेष्ठतरा मम पञ्चाक्षरी शिवे।
अस्य मन्त्रस्य चैवान्ये उपमन्त्राः प्रकीर्तिताः॥6॥

उनमें भी पंचाक्षरी मंत्र विपुल विख्यात ।
अन्य सहायक मंत्र भी लाते पुण्य प्रभात ।।6।।

अस्यैव हि प्रभावेण वेदधर्माश्च शाश्वताः।
इतिहासपुराणानि समस्ता आगमा अपि।
प्रवर्तन्ते हि देवेशि सर्वलोकोपकारकाः॥7॥

आगम, धर्म, पुराण में, यदपि नहीं विलगाव।
पर, सब में पंचाक्षरी डाले प्रकट प्रभाव।।7।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा।
आदित्यादिग्रहाश्चैव लोका वै भूर्भुवादयः॥8॥

इस पंचाक्षर मंत्र की महिमा, अतुल, अनूप।
देवयोनियाँ इसी बल, `रखें सनातन रूप।।8।।

गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धा ये चान्ये देवयोनयः।
पञ्चाक्षरप्रभावेण तिष्ठन्ति हि सनातनाः॥9॥

मिताक्षरी इस मंत्र का अर्थ गरिम, गम्भीर।
सब सारों का सार यह, बन्ध रखें जो चीर।।9।।

अल्पवर्णसमायुक्तमधिकार्थमसंशयम् ।
सारात्सारतरं शैवं मन्त्रं मोक्षैककारणम्।
सर्वसिद्धिप्रदं दिव्यं सर्वतत्त्वप्रकाशकम्॥10॥

ज्यों वट–तरु का बीज लघु, पर विशाल आकार।
वैसे इस लघु मंत्र की परिणति अगम, अपार।।10।।

आद्यबीजमिदं देवि विद्यानामप्यशेषतः।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं सारं वटबीजं यथा भुवि॥11॥

जिसकी वाणी में लसे, यह पंचाक्षर मंत्र।
मानो वह साक्षात् शिव, निस्संदेह, स्वतन्त्र।11।।

मन्त्रोऽयं वाचि यस्यास्ति स एवाहं न संशयः।

पञ्चाक्षरषडक्षरमन्त्रोद्धारविधिः

अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि विधिमुद्धारपूर्वकम्॥12॥

प्रणत मंत्र उद्धार की पद्धति करूं बखान।
जप की विधि के संग सुनो, प्रिये, लगाकर ध्यान।।12।।

नमः पदं वदेत् पूर्वं यान्तं शिवपदं ततः।
प्रणवेन समायुक्तं षडक्षरमिति स्मृतम्॥13॥

'नमः' पूर्वक 'आय' संग, 'शिव' का सत्व अनूप।
'ओम' सहित पंचाक्षर, धरे षडक्षररूप।।13।।

वेदागमेषु सर्वेषु संस्थितोऽयं महामनुः।
समस्तफलदस्तस्माज्ज्ञेयो वैदिकतान्त्रिकैः॥14॥

आगम वेदों में यही महामंत्र विन्यस्त।
वैदिक जन या तान्त्रिक, सब फल पाते मस्त।।14।।

षडक्षरमन्त्रमहिमा

यावन्तः शिवमन्त्राः स्युः परार्थैकपराः प्रिये।
षडक्षरस्य ते सर्वेऽप्यर्थस्यैव प्रकाशकाः॥15॥

अन्योतर शिव मंत्र हैं जो भी सिद्धि–सकाश।
इसी षडक्षर मन्त्र का जग में करें प्रकाश।।15।।

प्रमाणभूतः सर्वेषां वेदोक्तत्वाद् विशेषतः।
प्रणवेन युतो देवि मन्त्रराजः प्रकीर्तितः॥16॥

व्याख्यायित है वेद में यह षडक्षरी मंत्र।
अष्टसिद्धि का, मान्य यह, प्रामणिक संयंत्र।।16।।

शान्ताः सुशीला धर्मिष्ठाः सत्यव्रतपरायणाः।
वेदमन्त्रैकनिरतास्तेषां ध्येयः षडक्षरः॥17॥

धर्म, शील, सत्यव्रती, शुभ आचरित पुमान।
करें महेश्वर का सभी, इसी मंत्र से ध्यान।।17।।

कृतघ्नाः पापिनो ये च वेदमन्त्रबहिष्कृताः।
श्रद्धामतिविहीनाश्च देयस्तेषां न जातुचित्॥18॥

अपचारी, कपटी, कुटिल, अपकृति जिनका ध्येय।
दीक्षा इस शुचि मंत्र की, उनको कभी न देय।।18।।

मदेकशरणा ये च मदाराधनतत्पराः।
अपि वेदविरुद्धाश्च त एवात्राधिकारिणः॥19॥

आराधक शिव सत्व के, शरणागतिक सुजान।
वेद–विरोधी हों भले, पर, न अपात्र पुमान।।19।।

वैदिका अप्यभक्ताश्चेदन्यदेवार्चनापराः।
अन्यलाञ्छनयुक्ताश्च ते तु नात्राधिकारिणः॥20॥

वैदिकधर्मी लोग हैं अगर नहीं शिवभक्त।
वे दीक्षार्थ अपात्र हैं, उनसे रहो विरक्त।।20।।

येषु येषु महादेवि भक्तिरव्यभिचारिणी।
योग्यास्त एव मन्त्रस्य भक्तिरेवात्र कारणम्॥21॥

जग में है होता रहा, दोनों का गुणगान।
शिक्षा, शक्तिप्रधान है, दीक्षा, भक्तिप्रधान।।21।।

प्रणवेन विना दद्यात् स्त्रीशूद्राणामिमं मनुम्।
यदि दद्यात् सप्रणवमुभयोः पतनं भवेत्॥22॥

नारि, शूद्र को मंत्र यह, प्रणवरहित ही देय।
प्रणवरहित दीक्षा, प्रिये, पातक सम संज्ञेय।।22।।

मन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः

अस्य मन्त्रस्य वक्ष्यामि शृणु ऋष्यादिकं प्रिये।
वामदेव ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो देवः शिवः प्रभुः॥23॥

वामदेव इस मंत्र के ऋषि हैं, यह लो जान।
छन्द, पंक्ति के देवता, स्वयं शम्भु भगवान।।23।।

बीजं प्रणव एव स्यान्नमः शक्तिरुदाहृता।
शिवाय कीलकं मोक्षे विनियोगः प्रकीर्तितः॥24॥

'प्रणव', बीज इस मंत्र का, और 'नमः' है शक्ति।
कीलक शब्द 'शिवाय' है, मुक्तिदायि अनुरक्ति।।24।।

प्रत्यक्षरमिदं गोप्यं शृणुष्वावहिताऽखिलम्।
ऋषिश्छन्दो देवताश्च वर्णस्वरमुखानि च॥25॥

इसके हर यक वर्ण के, स्वर, मुख आदि अनूप।
गुह्य ज्ञान, बनकरं, सुनो, जिज्ञासा का कूप।।25।।

गौतमोऽथ ऋषिश्छन्दो गायत्री नन्दिदेवता।
आद्यस्वरः पीतवर्णः पूर्वस्थं प्रथमाक्षरे॥26॥

ऋषि गौतम, स्वर स्वरित, मुख, पूर्व, छन्द गायत्रि।
प्रथमाक्षर का, वर्ण है पीत, देव नन्दित्रि।।26।।

अत्रिर्नाम ऋषिश्छन्द उष्णिग् रुद्राधिदैवतम्।
कृष्णवर्णोऽनुदात्तश्च द्वितीये दक्षिणाननम्॥27॥

द्वितीय उष्णिक छन्द, ऋषि, अत्रि, देवता रूद्र।
दक्षिण मुख, अनुदात्त स्वर, वर्णः कृष्ण समुद्र।।27।।

विश्वामित्र ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुब् देवो हरिः प्रिये।
धूम्रवर्ण उदात्तश्च पश्चिमास्यं तृतीयके॥28॥

स्वर उदात्त, ऋषि विश्वरथ,पश्चिम मुख,सुर विष्णु।
छन्द अनुष्टुभ, अक्षरी, तृतीय वर्ण सहिष्णु।।28।।

अथाङ्गिरा ऋषिश्छन्दो बृहती देवतात्मभूः।
प्रचयः स्वर्णवर्णश्च चतुर्थे मुखमुत्तरम्॥29॥

मुख उत्तर, ऋषि अंगिरा, चतुराक्षर असिताभ।
छन्द वहति, सुर ब्रह्म, स्वर, प्रचय, वर्ण स्वर्णाभ।।29।।

भारद्वाज ऋषिश्छन्दो विराट् स्कन्दोऽधिदेवता।
स्वरितो रक्तवर्णश्च मुखमूर्ध्वं च पञ्चमे॥30॥

भरद्वाज ऋषि, ऊर्ध्व मुख, स्वरित देव स्कन्द।
पंचम अक्षर, रक्त रंग, रूचिर विराटी छन्द।।30।।

न्यासविधिः

ततो न्यासविधिं वक्ष्ये समासाच्छृणु पार्वति।
नकाराद्यैर्बिन्दुयुतैः पञ्चभिर्ब्रह्मभिः सह।
चतुर्थ्यन्तैः कनिष्ठादिष्वङ्गुलीषु क्रमान्न्यसेत्॥31॥

पंचाक्षर हों बिन्दुयुत्, परब्रह्म हो व्यास।
अंगुलियों में पार्वति, इस विधि से हो न्यास।।31।।

एवं कृत्वा करन्यासमङ्गन्यासमथाचरेत्।
मुखहृत्पादयुगलगुह्यशीर्षेषु च क्रमात्॥32॥

इस विधि से जब न्यास का, हो जाए अभ्यास।
साधक द्वारा हो तभी अंगों मे विन्यास।।32।।

चतुर्थ्यन्तैरनन्तादिशक्तिधामादिभिः सह।
षड्वर्णपूर्वकैर्न्यस्येत् षडङ्गानि यथाक्रमम्।
न्यासमेवं क्रमात् कृत्वा ततो ध्यायेत मां शिवम्॥33॥

शक्तिधाम पादादि में जोड़ चतुर्थ विभक्ति।
षडक्षरी शुचि मंत्र संग, ध्येये शिव–अनुरक्ति।।33।।

शिवध्यानम्

शुद्धस्फटिकसंकाशं चारुचन्द्रार्धधारिणम्।
रत्नाकल्पोज्ज्वलं दिव्यं महेशं पार्वतीपतिम्॥34॥

अर्धचंद्र धारे शिखर, शुद्धस्फटिक समान।
रत्नाभूषित ईश हैं, गौरी के पति–प्राण।।34।।

परश्वेणवराभीतिहस्ताम्बुजमनोहरम्।
पद्मासनसमासीनं रुद्रं देवगणैर्वृतम्॥35॥

पशु अभय मुद्रा सहित, मृग, वर, सर्वांगीण।
देवगणों से घिरे शिव, पद्मासन–आसीन।।35।।

व्याघ्रचर्मपरीधानं जटामण्डलमण्डितम्।
गङ्गाधरं विरूपाक्षं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम्॥36॥

व्याघ्रचर्म ओढ़े हुए जटाजूट अभिराम।
विरूपाक्ष पंचाननी शिव का रूप ललाम।।36।।

वृषध्वजं विश्वनाथं सुप्रसन्नमुखाम्बुजम्।
एवं ध्यात्वा हृदम्भोजे चिदातपविकासिते॥37॥

स्वामी सारे विश्व के, प्रसन्नता के दीप।
वही वृषध्वज ध्येय हैं, चित् के महिम महीप।।37।।

पूजनविधिः

आवाहनादिषण्मुद्रा दर्शयित्वाऽथ साधकः।
गन्धादिपञ्चमुद्राभिर्मानसैरुपचारकैः ।
पञ्चभिः पूजयित्वा तु जपेन्मन्त्रं निराकुलम्॥38॥

पूजन कर विधिवत् प्रिये, साध पंच उपचार।
आवाहन जप–मंत्र से होता है उद्धार।।38।।

नदीतीरे पर्वताग्रे देवागारे विशेषतः।
विविक्तदेशे निर्दोषे निर्भये निरुपद्रवे॥39॥

दोष, उपद्रव, भयरहित खोजें प्रथमस्थान।
वहां बैठ आराध्य का, भक्त लगाए ध्यान।।39।।

पद्मासने समासीनः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
समकायशिरोग्रीवस्त्रपालस्यादिवर्जितः ।
शिवं ध्यायन् जपेद्देवि जीवन्मुक्तो न संशयः॥40॥

ध्यान धरे जो स्वच्छ कर, मन–मानस का गेह।
उसकी जींवन्मुक्ति में नहीं रंच सन्देह।।40।।

त्रिविधो जपः

स जपस्त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसैः।
उच्चैस्ताल्वादिकस्पर्शाज्जपेत् स्पष्टपदाक्षरम्।
सम्यक् श्रोत्रगतश्चैव स जपो वाचिकः स्मृतः॥41॥

ऊंचा स्वर, सुस्पष्ट पद, शब्द दूर तक जाय।
सुस्पर्शी, मुखराक्षरी, जप वाचिक कहलाय।।41।।

शनैस्ताल्वादिकस्पर्शात्किञ्चित् स्पष्टपदाक्षरम्।
जपेदीषत्कर्णगतमुपांशुः स जपो भवेत्॥42॥

मितस्पृष्ट तालव्य से, मितश्रोतव्य, अगीत।
उच्चारण वाला सुमुखि, जप उपांशु अभिधीत।।42।।

मन्त्रार्थं मनसा ध्यायन् वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।
आवृत्य गणनात् पूर्वं जपेन्मानस उच्यते।
त्रयाणामपि चैतेषां वरं स्यादुत्तरोत्तरम्।।43।।

आवृति संग पद, वर्ण के जुड़ने लगें कलाप।
तब समझो, वह है प्रिये, उत्तम मानस–जाप।।43।।

एवं जप्त्वा जपान्ते च षडङ्गन्यासमाचरेत्।
ततो निर्याणमुद्रां वै प्रदर्श्य च समापयेत्।।44।।

मन्त्र जाप उपरान्त, हो पुनः न्यास को प्राप्त।
निर्याणी मुद्रा दिखा, जप को करें समाप्त।।44।।

पुरश्चरणविधिः

अथैतस्य प्रवक्ष्यामि पुरश्चरणमुत्तमम्।
पञ्चलक्षं जपेद् देवि दीक्षितश्च विशेषतः।।45।।

पुरश्चरण की विधि सुनो, बता रहा प्रिय गोय ।
पांच लाख जप जब करे, साधक दीक्षित होय।।45।।

अनन्यतत्परो भूत्वा तावत्संख्यादशांशकैः।
क्षीराज्यैस्तर्पयित्वाऽथ जुहुयात् तद्दशांशकम्।।46।।

पय, जल से तर्पण करें, अर्धलक्ष सम भाग।
दशमांशी घृत आहुती, रखे मनोरथ पाग।।46।।

पायसैः शर्कराभिश्च माहेशांस्तु शिवव्रतान्।
वेदमार्गैकनिरतान् सदाचारपरायणान्।।47।।

दशमभाग, संख्यांक कर, सद्विप्रों की खोज।
साथ रुचिर मिष्ठान्न के हो उन सबका भोज।।47।।

स्वधर्मनिरतान् शान्तान् भोजयेत् तद्दशांशतः।
एवंकृतो महादेवि पौरश्चरणिको भवेत्।।48।।

सदाचार सम्पन्न जन, अलसभाव को त्याग।
पुरश्चरण पूरा करें, भर सश्रद्ध–अनुराग।।48।।

ततः सिद्धमिमं मन्त्रं जपेन्नित्यमतन्द्रितः।
अष्टोत्तरसहस्त्रं वाऽप्यष्टोत्तरशतं च वा।
निर्धूय सर्वपापानि मम लोके महीयते॥49॥

पुरश्चरण यूं पूर्ण कर, करे मन्त्र–जप नित्य।
पाये जन, शिवलोक में आदर का लालित्य।।49।।

काम्यजपः

साधको यदि कामी स्यादिष्टान् कामान् प्रसाधयेत्।
द्विसहस्त्रं जपं कुर्याद् रोगाणामपनुत्तये।
आयुष्कामो जपेद् देवि त्रिसहस्त्रमिमं मनुम्॥50॥

दो हज़ार शुभ जाप हों, रोग–निवारण हेतु।
त्रय सहस्र जप में छ्जे, आयु–कामना केतु।।50।।

उत्तरोत्तरवृद्ध्यर्थं जपेन्नित्यं सहस्त्रशः।
मासत्रयं महादेव सर्वकामानवाप्नुयात्॥51॥

तीन माह पर्यन्त जो करें नित्य प्रति जाप।
सहस्रार इस मन्त्र का भरे समृद्धि अमाप।।51।।

शतलक्षजपाद् देवि साक्षाच्छम्भुः स्वयं भवेत्।
तस्मादयं सदा जप्यो भुक्तिमुक्तिफलेच्छुना॥52॥

कोटि बार जप जो करे, बने स्वयं शिव रूप।
भोग–मोक्ष–कामी रहे, कभी न दुख की धूप।।52।।

षडक्षरमन्त्रमहिमा

मुमुक्षुश्चेच्छिवासक्तचित्तो रागादिवर्जितः।
शिवार्पणधिया कुर्याद् यथारुचि जपादिकम्॥53॥

राग–द्वेष को त्याग यदि, जपे लगाकर ध्यान।
तो मुमुक्ष शिव शम्भु से पा जाए वरदान।।53।।

मुमुक्षूणां यथा शम्भुः संसारभयमोचकः।
तथा षडक्षरो मन्त्रः संसारभयनाशकः॥54॥

ज्यों शिव भक्त मुमुक्ष के बन्धन देते काट।
तथा षडक्षर मन्त्र की है सामर्थ्य विराट।।54।।

षडक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या परमया युतः।
सम्यग् लिङ्गार्चनं कुर्यान्मत्सामीप्यमवाप्नुयात्।।55।।

अगर षडक्षर जाप के, सतत जलाए दीप।
तो प्रतिफल उस भक्त को, अपने, रखें समीप।।55।।

लिङ्गार्चनस्य यावन्तो नियमाः कथितास्तु ते।
षडक्षरार्चनविधेः कोट्यंशेनापि नो समाः।।56।।

शिव-पूजन के जो कहे, वे सब नियम कृपण्य।
इस षडक्षरी मन्त्र के सम्मुख सभी नगण्य।।56।।

अनेन मनुना लिङ्गं सम्पूज्याष्टशतं जपेत्।
तेन सर्वे महामन्त्रा जप्ता एव न संशयः।।57।।

शिवलिंग-पूजन संग अगर जपे मालिका एक।
महामंत्र के जाप-से, पाये सुफल अनेक।।57।।

अनेन मन्त्रितं भस्म धारयेत् स्नानपूर्वकम्।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति मानवः।।58।।

अभिमन्त्रित मख-भस्म को, यदि ले तन पर धार।
तो गंगा-तीर्थो सदृश, होवे पुण्य प्रसार।।58।।

सूक्ष्मा क्रियाऽधिकफलं सर्वसाधारणं शिवे।
विनाऽऽयासेन संसिद्धिः पञ्चाक्षरमहामनोः।।
अस्मादायासबहुलाः सर्वे मन्त्राश्च तत्क्रियाः।।59।।

महामंत्र पंचाक्षरी क्रिया यदपि लघु रूप।
लेकिन जनसामान्य को इसके लाभ अनूप।।59।।

अतो मन्त्रानशेषांश्च त्यक्त्वा क्लेशाधिकान् परान्।
जपेत् षडक्षरं देवि सुलभं सर्वसिद्धिदम्।।60।।

अतः भक्त को चाहिए, तज सब क्रिया-कलाप।
सिद्धि हेतु, प्रेयसि, करे इसी मंत्र का जाप।।60।।

अथाक्षमालिकायाश्च लक्षणं सविधानतः।
वक्ष्ये शृणु वरारोहे मणीनां च विशेषतः॥61॥

कैसे मनके माल के, कैसी हो जप–माल।
सुनो ध्यान से, हे प्रिये, बतला रहा हवाल।।61।।

अभङ्गुरा दृढाः स्निग्धा नवा दृष्टिप्रियाः शुभाः।
श्रेष्ठा हि जपमालार्थं रुद्राक्षाः केसरान्विताः॥62॥

अक्षत, नव, चिक्कण, सुघर, अवलोकन में प्रेष्ठ।
केसरयुत् रूद्राक्ष हीं माने जाते श्रेष्ठ।।62।।

यदुन्नतं मणौ वक्त्रं पृष्ठं निम्नं स्थिरासनम्।
मुखं पृष्ठं विदित्वैवं मालिकां घटयेत् सुधीः॥63॥

पृष्ठ और मुख भाग की प्रथम करे पहचान।
फिर विवेकिनी बुद्धि से गूंथे, माल, सुजान।।63।।

त्रिवृता पट्टसूत्रेण कार्पासेनाथवा पुनः।
वक्त्रं वक्त्रेण सम्प्रोत्य पृष्ठं पृष्ठेन योजयेत्।
मूले स्थूलानि सम्प्रोत्य सूक्ष्माण्यग्रे नियोजयेत्॥64॥

मूल भाग में मणि बड़ी, लघ्वी उसके बाद।
पृष्ठ जाय मिल पृष्ठ से, मुख–मुख हो संवाद।।64।।

गोपुच्छवलयाकारां कृत्वा मालां सुशोभनाम्।
मणीनामन्तरे ग्रन्थिः कर्तव्या वर्तनद्वयी॥65॥

धेनु–पुच्छ–सी गोल हो, गुंथी हुई जपमाल।
दो मणियों के मध्य, दे दो–दो ग्रन्थि संभाल।।65।।

न स्यात् परस्परं घर्षो यथा कुर्वीत साधकः।
अन्योन्यघर्षणं देवि भवेज्जपविनाशकृत्॥66॥

मणियों मे घर्षण न हो, भक्त रखें यह ध्यान।
जप में यदि ऐसा हुआ, सम्भव है नुकसान।।66।।

मेर्वाख्यं योजयेदेकं मणिं मूलाग्रमन्तरा।
परिवृत्त्य जपेन्मेरुं प्रदक्षिणपरिक्रमात्।।67।।

दो मूलों को जोड़कर, गुँथे मेरू सरपंच।
प्रदक्षिणा क्रम से नहीं उल्लघंन हो रंच।।67।।

पुनर्मूलं समारभ्य न कुर्यान्मेरुलङ्घनम्।
एवं कृत्वाऽक्षमालां तु संस्कुर्याद् देशिकोत्तमः।।68।।

बिन लाँघे उस मेरू को, फिर से साधे मूल।
देशिकोत्तम मालिका सँस्कारे अनुकूल।।68।।

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैरभिषिच्य यथाविधि।
जपेत् पञ्चाक्षरं मन्त्रमष्टोत्तरसहस्त्रकम्।।69।।

पंचामृत, पँचगव्य से, माला का अभिषेक।
जप पंचाक्षर मंत्र का देता पुण्य अनेक।।69।।

वर्णात्मकं ततो ध्यात्वा दद्याच्छिष्याय देशिकः।
एवं कृत्वाऽक्षमालां च जपेन्नित्यं न धारयेत्।।70।।

इस विधि माला गूँथकर दे शिष को आचार्य।
धारे मत, जप ही करे, पूरण हों सब कार्य।।70।।

न क्षिपेदशुचिस्थाने न स्पृशेद् वामपाणिना।
जपकाले जपं कृत्वा गोपनीया प्रयत्नतः।।71।।

शुचि, गोप्यस्थाने रखे, यह संस्कृत जप–माल।
छुए न बायें हाथ से, इसका रखें खयाल।।61।।

न दर्शयेदक्षमालां दीक्षाहीननृणां प्रिये।
प्रमादाद् दर्शनं कुर्यात् पुनः संस्कारमाचरेत्।।72।।

दीक्षा–हीनों को नहीं, हो यह माल प्रदर्श।
चूके तो सँस्कार का, फिर से हो उत्कर्ष।।72।।

एवं संस्कृतया चाक्षमालया नियतः शुचिः।
संकल्प्य च जपेन्नित्यं यावज्जीवं विधानतः॥
स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥73॥

इस विधि श्रद्धाभाव से नित्य करें जो जाप।
श्रेष्ठ भोग कर, मुक्त हो, कटें सभी सन्ताप।।73।।

पञ्चाक्षरीविद्यामहिमा

पञ्चाक्षरीजापको हि यत्र तिष्ठति पार्वति।
सादरं तत्र तिष्ठामि मम प्रियतरो यतः।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य जपेत् पञ्चाक्षरं शुभम्॥74॥

जो जपता इस मंत्र को, मुझको प्रियवह भक्त।
वह पंचाक्षर मध्य है, मैं उसमें अनुरक्त।।74।।

वेदाः साङ्गाः पुराणानि मन्त्राश्च बहवस्तथा।
आगमा विविधा देवि विद्यास्थानानि यानि च।
पञ्चाक्षरे प्रलीयन्ते निर्गच्छन्ति पुनस्ततः॥75॥

आर्षग्रंथ मन्त्रादि जो हैं विद्या–स्थान।
इसी मंत्र से उपजते, यहीं करें प्रणिधान।।75।।

एतां पञ्चाक्षरीं विद्यां हृद्यां मम समाश्रिताः।
कलावपि प्रमुच्यन्ते महात्मानो दृढव्रताः॥76॥

दृढ़संकल्पी जो करें पंचाक्षरी प्रयुक्त।
कलियुग में भी वे सभी, होते बन्धन– मुक्त।।76।।

पञ्चाक्षुरे महामन्त्रे स्थितेऽपि कलिजा नराः।
पतन्ति नरकं मूढा मायया परिमोहिताः॥77॥

मायामोही मूढ़ जो रहते जप से दूर।
भोगा करते दुःख वे, कुम्भी के भरपूर।।77।।

महती खलु सा माया दुस्तरा त्रिगुणात्मिका।
धर्मार्थकामैस्त्रिविधैर्जगद्व्यामोहकारिणी ॥78॥

तीन गुणों से युक्त यह माया, अपरम्पार।
छलती है पुरूषार्थ सब, बहुत कठिन निस्तार।।78।।

मदर्पणधिया येषां कर्मारम्भफलं शिवे।
मदेकशरणा लोके मायामेतां तरन्ति ते॥79॥

अर्पित अपने फल मुझे करते जोकि सश्रद्ध।
कभीं न माया-मोह में होते हैं आबद्ध।।79।।

अकामचित्तशुद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्।
अनेकजन्मनामन्ते मयि भक्तिर्दृढा भवेत्॥80॥

निष्कासी, श्रुति, स्मृति के धर्मी पाते शक्ति।
इन सब की शिवतत्व में दृढ़ होतीं है भक्ति।।80।।

येषां दृढा भवेद् भक्तिर्मदनुग्रहकारिणी।
तेषां संजायते श्रद्धा मन्त्रे पञ्चाक्षरे शुभे॥81॥

जो रखते हैं प्राण में, मेरे प्रति अनुराग।
उन सबकी इस मंत्र में श्रद्धा जातीं जाग।।81।।

पुनः षडक्षरमन्त्रमहिमा

नगानां हि यथा मेरुः सरसां सागरो यथा।
सरितां च यथा गङ्गा पशूनां गौर्यथा वरा॥82॥

अपने-अपने वर्ग में ज्यों हैं परम प्रतिष्ठ।
धेनु, धराधर, मेरू, अपि, गंगा, सिन्धु जलिष्ठ।।82।।

मणीनां कौस्तुभो यद्वल्लोहानां काञ्चनं यथा।
तथा षडक्षरपरो मानुषेषु वरः प्रिये॥83॥

स्वर्ण, धातु में, कौस्तुभ, मणियों में विख्यात।
वैसे हीं इस मन्त्र का साधक पावनगात।।83।।

तस्मात् सर्वक्रियारम्भान् फलानि च विशेषतः।
त्यक्त्वा षडक्षरपरो भवेन्नित्यं विचक्षणः॥84॥

अतः विबुध को चाहिए, सब आडम्बर छोड़।
षडक्षरी-अभिमुख रखे, निज मन-मानस मोड़।।84।।

एतावद्धि शिवज्ञानमेतावत् परमं पदम्।
यस्योत्रमः शिवायेति सदा वाचि प्रवर्तते॥85॥

साररूप इस ज्ञान का, यह ही मुख्य प्रदाय।
प्रणवपूर्वक मंत्र यह गूँजे नमः शिवाय।।85।।

सकृत् प्रसन्नान्मोहाद्वा शिवायेत्यक्षरत्रयम्।
उच्चरेद्यस्तस्य विघ्नाः सर्वे शान्तिं प्रयान्ति हि।
प्रणवादिनमोऽन्तं चेत् किम्पुनः सर्वसिद्धिदम्॥86॥

साधक अगर प्रमादवश, ले शिवाय उच्चार।
तब भी हो भव–भीति से, उसका बेड़ा पार।।86।।

जप महिमा

सविधानं गुरोर्लब्ध्वा जपेद् यः सततं नरः।
तस्य हस्तस्थितं विद्धि मत्पदं सम्पदां पदम्॥87॥

विधिपूर्वक इस मंत्र से दीक्षित हो जो शिष्य।
उसका सुख सम्पति से, रहे समृद्ध भविष्य।।87।।

रहस्यं गोपनीयम्

इदं रहस्यं पापघ्नं वेदानां सारमुत्तमम्।
गोपनीयं महादेवि तव प्रीत्या प्रकीर्तितम्॥88॥

जो मैंने वर्णित किया, है वेदों का सार।
गोपनीय है, गोप्य ही रखें उसे प्रतिहार।।88।।

नास्तिकाय कृतघ्नाय भक्तिहीनाय जातुचित्।
न वक्तव्यमिदं शास्त्रं श्रद्धाहीनाय शाङ्करि॥89॥

नास्तिक, दुष्ट, कृतघ्न जो, पाले कल्मष, क्लेश।
उसे न करना चाहिए शास्त्रों का उपदेश।।89।।

योग्याय वक्तव्यम्

शिवभक्ताय शान्ताय विशेषादास्तिकाय च।
वक्तव्यं हि प्रयत्नेन गुरुवाक्यरताय च॥90॥

शान्तचित्त, आस्तिक, सुजन, गुरू आज्ञा का धात्र।
वह ही साधक भक्त हैं, सदुपदेश का पात्र।।90।।

एवमुक्तं समासेन पञ्चाक्षरमहामनोः।
माहात्म्यं सविधानं ते किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥91॥

महामंत्र की प्रिय तुम्हें, कथा कही अभिरोज।
जिज्ञासा है और क्या, बोलो निस्संकोच।।91।।

✡✡✡

चतुर्थः पटलः

देव्युवाच

सर्वसिद्धिप्रदा मन्त्रास्त्वयोक्ता बहवः पुरा।
तेषु सर्वेषु देवेश कुतः श्रेष्ठः षडक्षरः॥1॥

यदपि सुनी सबकी प्रभो, व्याख्या सुष्ठु, स्वतन्त्र।
सर्वश्रेष्ठ है किसलिए यह षडक्षरी मंत्र।।1।।

अस्य षड्वर्णहेतुत्वं सञ्जातं केन हेतुना।
एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो॥2॥

इन छह वर्णो की भला स्थिति है किस हेतु।
कहें, बने ये किस तरह कल्याणों के सेतु।।2।।

शिव उवाच

सम्यक् पृष्टमिदं देवि मन्त्रगोप्यं सुदुर्लभम्।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिता॥3॥

जिज्ञासायुत् है प्रिये! प्रश्न तुम्हारा ठीक।
सावधान होकर सुनो, तथ्य न रंच अलीक।।3।।

प्रणवः पञ्चविधः

सर्वमन्त्रेषु मुख्योऽयमाद्यः प्रणव ईरितः।
सर्वेषामेव मन्त्राणां मातृस्थानमितीरितम्॥4॥

पहले अक्षर से प्रणव, वन्दित मातृस्थान।
जिससे मंत्रोत्पत्ति की, महिमा जुड़ी महान।।4।।

सोऽयं पञ्चविधः प्रोक्तः साकल्यादिप्रभेदतः।
साकल्यं प्रथमं प्रोक्तं शाम्भवं तु द्वितीयकम्॥5॥

पंच प्रकारी है प्रणव, भेदक दृष्टि वरीय।
प्रथम भेद साकल्य है, शांभव भेद द्वितीय।।5।।

सौख्यं तृतीयमित्युक्तं सावश्यं तु चतुर्थकम्।
सायुज्यं पञ्चमं प्रोक्तं भेदमेषां शृणु क्रमात्॥6॥

सौख्य और सावश्य संग पंचम है सायुज्य।
पांचों में है हे प्रिये, श्रद्धा–भाव प्रयुज्य।।6।।

सद्यादिपञ्चवक्त्रेषु जातं प्रणवपञ्चकम्।

त्रिवर्णः प्रणवः
अकारो दक्षिणो ज्ञेयो वामगः स्यादुकारकः॥7॥

जातक है मुख पंच के, माने सब विद्वान।
अकारादि के जन्म के, मुख हैं पृथकस्थान।।7।।

मकारो मध्यमः प्रोक्तस्त्रिवर्णः प्रणवो भवेत्।
तन्मध्ये तु हकारः स्यात् साक्षान्मोक्षप्रदः शिवः॥8॥

प्रिये, मकार हकारयुत्, धारे शुभतर रूप।
इन सबसे मिलकर प्रणव, देता मोक्ष अनूप।।8।।

आद्यस्वरः पञ्चमेन वर्गान्तेन च संयुतः।
वियद्बीजसमायुक्तः प्रणवः परिकीर्तितः॥9॥

अकारादि के बिन नहीं, पूर्ण रूप कल्पेय।
युक्त शक्ति–सामर्थ्य ही, है साधक को ध्येय।।9।।

अकारो ब्रह्मबीजं स्यादुकारो विष्णुबीजकम्।
मकारो रुद्रबीजं च तेषां देहात्मकः शिवः॥10॥

बीज विष्णु, अज, रूद्र के, हैं यह शुभे त्रिकार।
शिव का तन पाकर जिसे, हरता सकल विकार ।।10।।

अकारः प्रकृतिश्चैवमुकारः पुरुषात्मकः।
तन्नियन्ता मकारः स्यान्नादः साक्षात् सदाशिवः॥11॥

प्रकृति, पुरूष के साथ हीं, हैं ये नाद स्वरूप।
तृप्ति प्राप्त करते जिन्हें पा रोमों के कूप ।।11।।

इच्छाशक्तिरकारः स्यात् क्रियाशक्तिरुकारकः।
ज्ञानशक्तिर्मकारः स्यान्नादः साक्षात् परः शिवः॥12॥

शक्तिमती इच्छा, क्रिया, सृष्ठु समन्वित ज्ञान।
नादरूप साक्षात् मिल, जाते शिव भगवान।।12।।

अकारो रक्तवर्णश्च श्यामलः स्यादुकारकः।
मकारः स्फटिकाभः स्याद् वर्णातीतः शिवाक्षरः॥13॥

लाल, श्याम, सुस्फटिक, ये वर्णरूप हैं नाम।
नाद, इन सभी से पृथक, देता शुभ परिणाम।।13।।

अकारो राजसः प्रोक्त उकारस्तामसात्मकः।
मकारः सात्त्विको ज्ञेयो नादः स्यात्त्रिगुणात्मकः॥14॥

जिस, तामस, सात्विक, गुणरूप में विभाज्य।
इन तीनों सँग नाद, प्रिय, है सर्वथा अत्याज्य।।14।।

अकारो ब्रह्मरूपः स्यादुकारो विष्णुरूपकः।
रुद्रात्मको मकारः स्यादोङ्कारस्तु सदाशिवः।
नादः परशिवो ज्ञेयः पञ्चदेवात्मकः स्मृतः॥15॥

विष्णु, सदाशिव, रूद्र, अज, परशिवात्म आयास।
पांच देवता प्रणव में करते सदा निवास।।15।।

अकारं बिन्दुरूपं च जाग्रत्स्थमिति भावयेत्।
स्वप्नस्थमथ जानीयादुकारं नादरूपकम्॥16॥

बिन्दु, नाद की स्थिति प्रिये, जाग्रत, स्वप्न विबुद्ध्य।
यही मान्यता योग्य है, इतर भाव अवरूद्ध्य।।16।।

सुषुप्तिस्थं मकारं च कलारूपं वरानने।
ॐकारं शक्तिरूपं च तुर्यास्थमिति भावयेत्॥17॥

कला, सुषुप्ति अवस्थ प्रिय है शब्द का मकार।
शक्तिरूप में तुरीया, है व्यवस्थ ओंकार।।17।।

तुर्यातीतस्थितं विद्याच्छिवं सर्वात्मकं परम्।
योगिनां साधनमिदमोमित्येकाक्षरं परम्॥18॥

तत्व अवस्थातीत है, शिवः समष्टि स्वरूप।
यूँ यह एकाक्षर प्रणव, साधक–साध्य अनूप।।18।।

प्रणवपञ्चकोद्धारः

आद्यं पञ्चमसंयुक्तं नादो मान्तेन संयुतः।
साकल्यप्रणवो ज्ञेयः पूर्ववक्त्रसमुद्भवः॥19॥

अ,उ,म, ह= इति।

यह त्रिकार संयुक्त हो, संचरता प्राबल्य।
कहलाता है पूर्वमुख जात प्रणव साकल्य।।19।।

स्वरादिपञ्चमयुतं षष्ठान्तं नादसंयुतम्।
तृतीयसहितं देवि शाम्भवं दक्षिणोद्भवम्॥20॥

होता है शाम्भव प्रणव तब जाकर उत्पन्न।
यह त्रिकार जुड़ता यदा, अन्यत् विधि अधिमन्न।।20।।

अ,उ,म, ह, इ = इति।

वर्गान्तं स्वरवर्णादिपञ्चमं नादसंयुतम्।
तथा स्वरयुतं सौख्यं पश्चिमाननसम्भवम्॥21॥

इसी भांति जब दूसरा, मिलता विहित प्रकार।
सौख्य प्रणव के नाम से, रचता रूप त्रिकार।।21।।

अ, उ, म, ह, इ = इति।

आद्यं पञ्चमयुक्तं च नादो वर्गान्तसंयुतम्।
एकादशयुतं प्रोक्तं सावश्यं चोत्तरोद्भवम्॥22॥

एकादशम् चतुर्दशम् स्वर संयुक्त विमृश्य।
यह त्रिकार युति प्राप्त कर, बने प्रणव सावश्य।।22।।

अ, उ, मह, ए = इति।

अकारः पञ्चमोपेतो वर्गान्तो नादसंयुतः।
चतुर्दशस्वरोपेतं सायुज्यं चोर्ध्वसम्भवम्॥23॥

ऊर्ध्वमुखी स्वर नाद से, जब यह मिले त्रिकार।
पुण्य प्रणव सायुज्य का होता है उद्धार।।23।।

अ,उ,म, ह, औ = इति।

प्रणवपञ्चकस्वरूपम्

साकल्यं रक्तवर्णं च छन्दोऽनुष्टुप् तथा ऋषिः।
सनत्कुमारो भूतं च पार्थिवं समुदीरितम्॥24॥

छन्द अनुष्टुप लाल रंग, ऋषिवर सनत्कुमार।
होता है साकल्य का पृथ्वी से सहकार।।24।।

कर्म तत्त्वं तथेशानः प्रोक्तमस्याधिदैवतम्।
मात्राचतुष्कसहितं बीजं सर्वार्थसिद्धिदम्॥25॥

सादाख्यात्मक कर्मयुत्, इष्टदेव ईशान।
चतुर्मात्रिक बीज यह, करे विश्व कल्याण।।25।।

अञ्जनाभं शाम्भवं च त्रिष्टुप् छन्द उदीरितम्।
भारद्वाज ऋषिर्भूतं सलिलं कर्तृतत्त्वकम्।।26।।

युक्त कर्तृसादाख्य से इष्टदेव परमेश।
भरद्वाज ऋषि, त्रिष्टुपः छन्द, वारिकल्पेश।।26।।

ईश्वरस्त्वधिदैवं च पञ्चमात्रासमन्वितम्।
सर्वसिद्धिप्रदं देवि साधकानामिदं परम्।।27।।

पंचमात्रिक बीज शुभ जहां समन्वित ऋद्धि।
देता साधक–लोक को, जो नित सिद्धि, समृद्धि।।27।।

सौख्यं गोक्षीरसदृशं बृहतीच्छन्द ईरितम्।
विश्वामित्र ऋषिश्चैव भूतं तेज उदीरितम्।।28।।

वर्ण सौख्य का श्वेत है, ऋषि हैं विश्वामित्र।
छन्द वृहति, तेजोन्मुख, तत्व समूर्तजनित्र।।28।।

तत्त्वं समूर्तमाख्यातं ब्रह्मा चास्याधिदैवतम्।
पञ्चमात्रात्मकं बीजमखिलार्थप्रसाधकम्।।29।।

पंचमात्रिक बीज सत् ब्रह्म देव शुभ इष्ट।
सकल साधना हेतु यह साधक, पुष्ट, बलिष्ठ।।29।।

कुङ्कुमाभं तु सावश्चं जगतीच्छन्द उच्यते।
ऋषिर्गौतम इत्युक्तो इत्युक्तो वायुर्भूतमुदीरितम्।।30।।

कुंकुमवर्णी गौतमी, जगती जिसका छन्द।
चतुः प्रणव सावश्य सत् सेवित वायु अमन्द।।30।।

अमूर्तं तत्त्वमाख्यातमीशस्तस्याधिदेवता।
पञ्चमात्रासमायुक्तं सर्ववश्यकरं शुभम्।।31।।

पंचमात्रिक संवलित, ईश्वर जिसका देव।
सर्वलोकहित–कामना करता जो स्वयमेव।।31।।

सायुज्यं स्फटिकप्रख्यं गायत्रीच्छन्द ईरितम्।
अगस्त्यो हि ऋषिश्चैव वियद्भूतमुदीरितम्॥32॥

पंचम यह सायुज्य है, शिवासादाख्य प्रमाण।
ऋषि अगस्त्य गायत्रियुत् करें लोक– कल्याण।।32।।

शिवतत्त्वं समाख्यातमधिदैवं सदाशिवः।
पञ्चमात्रात्मकं बीजं सायुज्यफलसाधकम्॥33॥

पूत प्रणव सायुज्य, सब, मंत्रों में अधिमन्य।
जो फल, साधक, भक्त को करें प्रदान अनन्य।।33।।

तस्मादिदं समस्तानामादिबीजमुदीरितम्।
अनेन सहितो मन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः॥34॥

वैशिष्टयों के कारणे, सबका कारणभूत।
साधक–जन के हित करे, अगणित लाभ प्रसूत।।34।।

पञ्चाक्षरः षडक्षरश्च मन्त्रः

पञ्चाक्षरो महामन्त्रः प्रणवेन युतः शिवे।
षडक्षर इति प्रोक्तो मन्त्रराजाह्वयः परः॥35॥

प्रिये शिवे! पंचाक्षरी पुण्य प्रणव अभिराम।
इसको सुलभ षडक्षरी मंत्रराज का नाम।।35।।

ॐकारो मम देहः स्यान्नकाराद्यास्तथैव च।
सद्यादिपञ्चवक्त्राणि क्रमादेवं वरानने॥36॥

ओंकार हैं देह मम, आनन पंच नकार।
मन से हो यह सत्य शुभ, वरानने! स्वीकार ।।36।।

पञ्चब्रह्मात्मको मन्त्रः प्रणवाद्यः षडक्षरः।

षडक्षरस्य षद्तत्त्वरूपत्वम्

अस्य षद्तत्त्वरूपं तु सुसूक्ष्मं श्रूयतां क्रमात्॥37॥

इससे आगे की कथा, सुनो देवि दे ध्यान।
षडक्षरी छह तत्व का, मैं कर रहा बखान ।।37।।

निवृत्तिमार्गतो वक्ष्ये सर्वतत्त्वार्थशोभनम्।
यकारः पूर्णतायुक्तो वाकारो नित्यवाचकः॥38॥

क्रम यद्यपि विपरीत है, फिर भी है संज्ञेय।
नित्य, पूर्ण यवकार है वाचक तत्व, प्रदेय ॥38॥

आनन्दः स्याच्छिकारस्तु चिद्रूपो हि मकारकः।
सत्यरूपो नकारः स्यान्मिश्रात्मा प्रणवो भवेत्॥39॥

प्रणव सत्वगुणं युक्त है जगदानन्दस्वरूप।
जिसमें निहित नकार के संग मकार चिद्रूप॥39॥

यकारः परसंज्ञः स्याद् वाकारो गूढरूपकः।
शरीरस्थः शिकारश्च लिङ्गक्षेत्रं मकारकः।
अनादिरूपवान् नश्च प्रणवो हि महान् स्मृतः॥40॥

शिव की स्थिति देह में, लिंगक्षेत्र मकार।
महिम महत्तायुत् प्रणव, स्वीकारे संसार॥40॥

यकारस्तु पराशक्तिरादिशक्तिश्च वाक्षरः।
इच्छाशक्तिः शिकारः स्याज्ज्ञानशक्तिर्मकारकः।
क्रियाशक्तिर्नकारः स्यात् प्रणवो हि चिदात्मकः॥41॥

आदि, ज्ञान, इच्छा, क्रिया, आदिक शक्ति विभिन्न ।
प्रणव मध्य चित् शक्ति से नहीं रहीं विच्छिन्न॥41॥

प्रथमं शिवसादाख्यममूर्तं च ततः परम्।
ततश्च मूर्तसादाख्यं ततो वै कर्तृनामकम्॥42॥

कर्तृ, कर्म मूर्तादि संग यक सादाख्य अमूर्त।
सबके अपने गुण पृथक्, सबके पृथक् मुहूर्त॥42॥

कर्मसादाख्यमपरं महारूपमनन्तरम्।
यादिप्रणवपर्यन्तमेवं ज्ञेयं वरानने॥43॥

पंचरूप सादाख्य का पावन प्रणव महान।
वैभव यात्रा का प्रिये, है अन्तिम सोपान॥43॥

प्रसादश्च चरश्चैव शिवलिङ्गं गुरुस्तथा।
आचारश्च महालिङ्गं यादितारान्तगोचरम्॥44॥

गुरू, शिव, चरप्रसाद अपि, महालिंग आचार।
है यकार से प्रणव तक जीवों के आधार।।44।।

ऐक्यश्च शरणश्चैव प्राणलिङ्गी प्रसादकः।
माहेश्वरश्च भक्तश्च षट्स्थलात्मा षडक्षरः॥45॥

भक्त, शरण, माहेश्वरी, ऐक्याप्राण, प्रसाद।
प्रणव अक्षरों से बँधे सबके स्थल, पाद।।45।।

भावो ज्ञानं च सुमनो निरहङ्कार एव च।
बुद्धिश्चित्तं च भावादिहस्तरूपः षडक्षरः॥46॥

चित्त, बुद्धि, मन, ज्ञान अरू, निरहंकृति, सद्भाव।
षडक्षरों से हस्त ये रखते सदा लगाव।।46।।

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः।
तथा परशिवश्चैव षड्देवात्मा षडक्षरः॥47॥

षडक्षरों के देवता, ब्रह्म, सदाशिव, रूद्र।
विष्णु, ईश, परशिव सहित, वत्सल, स्नेह–समुद्र।।47।।

स्फटिकाभो यकारश्च वाकारः श्वेतवर्णकः।
नीलद्युतिः शिकारः स्याद् रत्नकान्तिर्मकारकः॥48॥

वकार और यकार के, संग शिकार, मकार।
रत्नकान्त, सित, नील, रंग, सबके प्रथा प्रकार।।48।।

नकारः पीतवर्णः स्यात् तारो वर्णातिगः परः।
भूजलाग्निमरुद्व्योम्नां बीजान्येतानि शोभने॥49॥

धरा, हुताशन, वायु, जल, सर्वोपरि आकाश।
तार वर्ण, पीताभ छबि, सृजते बीज–प्रकाश।।49।।

प्रणवः सर्वतत्त्वानां बीजं कारणकारणम्।
तस्मादयं महामन्त्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः॥50॥

सब तत्वों का बीज है, प्रणव सदैव स्वतन्त्र।
स्वामी सारे जगत का, यह षडक्षरी मन्त्र।।50।।

ईशो महेश्वरश्चैव शिवो विद्या तथैव च।
आत्मा परशिवश्चैव यादीनां तत्त्वतः क्रमात्॥51॥

विद्या, आत्मा, ईश, शिव अपि परशिव स्वयमेव।
महा महेश्वर, तत्व के अन्तर्गत सब देव।।51।।

यार्णं वेदसहस्राढ्यं वार्णं चाथर्वणं स्मृतम्।
शिकारः सामवेदः स्यान्मकारो यजुरुच्यते।
ऋग्वेदो हि नकारश्च ज्ञानात्मा प्रणवः स्मृतः॥52॥

सहस्र वेदों से लसित है यकार का वर्ण।
ओंकार अक्षर प्रणव, यथा धातु में स्वर्ण।।52।।

तस्मादशेषवेदानां मन्त्राणां च विशेषतः।
मूलबीजमयं मन्त्रश्चिन्तारत्नमिवापरम्॥53॥

चिन्तामणि–सा प्रणव का, रहता प्रकट प्रभाव।
परब्रह्म का जिस तरह, कोमल कलित स्वभाव।।53।।

षडात्मकं जगत् सर्वं षडक्षरसमुद्भवम्।
स्थीयते लीयते चास्मिन् तस्माद् ब्रह्मात्मको मनुः॥54॥

छह प्रकार की वस्तु में है विभक्त संसार।
जिसमें प्रसरी ब्रह्म की लीला शक्ति अपार।।54।।

षडक्षरमन्त्रमहिमा

ॐकारः सर्वमन्त्राणां मन्त्रराजः प्रकीर्तितः।
पञ्चाक्षरयुतो देवि साक्षात् सायुज्यकारणम्॥55॥

यह षडक्षरी मन्त्र है, सब मन्त्रों का स्वामि।
देता शिव सायुज्य यह जो उच्चरे नमामि।।55।।

सर्वसिद्धिकरं शान्तं सर्वमन्त्रेषु गोपितम्।
विद्यानामादिभूतं च षडक्षरमिदं परम्॥56॥

सभी सिद्धियों के उपरि फहराता जय–केतु।
गोपनीय यह मंत्र, सब, विद्याओं का हेतु ।।56।।

एवं षड्वर्णरूपं च षडक्षरमहामनुम्।
विद्धि गोप्यं वरारोहे दुर्लभं ज्ञातुमात्मनाम्॥57॥

छह वर्णों का मंत्र यह, रखें भक्तजन गोय।
इसके प्रकृत प्रभाव को नहिं समझै हर कोय।।57।।

सर्वाणि पञ्चभूतानि तन्मात्राणां च पञ्चकम्।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि तथा कर्मेन्द्रियाणि च॥58॥

महाभूत, तन्मात्रा, ज्ञानेन्द्रियां समस्त।
हस्त–पाद कर्मेन्द्रियां, जीवन का अभ्यस्त।।58।।

ब्रह्माणि कृत्यानि पञ्चपञ्चात्मकानि च।
तानि सर्वाणि बोध्यानि पञ्चवर्णैर्महामनोः॥59॥

कृत्य, ब्रह्म संख्यांकित जितने भी हैं, पांच।
इस पंचाक्षरि स्रोत से, निकले सभी कुलांच।।59।।

लोके हि पञ्चधा यानि प्रसिद्धांनि विशेषतः।
ज्ञेयानि तानि सर्वाणि पञ्चाक्षरमयानि हि॥60॥

हैं पदार्थ कुछ और भी पँचरूप में विभक्त।
जिनसे परिचित हैं सभी सेवक, साधक, भक्त।।60।।

एवं पञ्चात्मकं सर्वं सुसूक्ष्मं कथितं शिवे।
ध्येयो मुमुक्षुभिर्नित्यमनेन मनुना शिवः॥61॥

हर पंचात्मक तत्व का मैंने किया बखान।
हर मुमुक्षु इस प्रणव का, करे नित्य प्रति ध्यान।।61।।

चिराभ्यस्तेन योगेन षडक्षरमयेन च।
जीवन्मुक्त इति ज्ञेयो मदनुग्रहभाग् भवेत्॥62॥

मंत्र सहित जो योग का करता नित अभ्यास।
मेरी सन्निधि प्राप्त वह कर लेता सायास।।62।।

अधिकारिविवेचनम्

इदं रहस्यं परमं गोप्यं कर्मान्तकारकम्।
न वक्तव्यं न वक्तव्यं शिवाचारविरोधिने॥63॥

गोप्य षडक्षर मंत्र यह, करे कार्य सब सिद्ध।
पर, अपचारी व्यक्ति को है सर्वथा निषिद्ध।।63।।

दाम्भिकाय कृतघ्नाय विषयग्रस्तचेतसे।
चञ्चलाय च दुष्टाय व्रतभ्रष्टाय दुःखिने॥
न दातव्यमिदं शास्त्रं देवान्तरपराय च॥64॥

जिसका छल-बल से भरा रहता चित्त प्रदेश।
उस कृतघ्न को भी प्रिये ! है निषिद्ध उपदेश।।64।।

अज्ञानादथवा लोभान्मोहाद्वा परमेश्वरि।
दीयते यदि मन्त्रोऽयमुभयोः पतनं भवेत्॥65॥

लोभ, मोह, अज्ञानवश, देते जो यह ज्ञान।
दाता-आदाता, उभय, पाते हैं नुकसान।।65।।

दातव्यं मयि भक्ताय मुक्तिकान्ताभिलाषिणे।
दृढव्रताय शिष्टाय लिङ्गनिष्ठारताय च॥66॥

भक्ति भाव से जो भरे, मुक्ति कामना कन्द।
उसको ही यह मंत्र प्रिय! देता हैं आनन्द।।66।।

विद्याहङ्कारमुक्ताय सदाचाररताय च।
आस्तिकाय विशेषेण भक्तियुक्ताय शाङ्करि॥67॥

सदाचार पालक शुभे! रंच न जो अभिमन्न।
आस्तिकता का दृढ़ व्रती, शैवभक्ति-सम्पन्न।।67।।

इदं रहस्यं पापघ्नमात्मज्ञानप्रकाशकम्।
सारात्सारतरं दध्नो नवनीतमिवोद्धृतम्।
षडक्षरमनुज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमोत्तमम्॥68॥

दधि मथने से जिस तरह मिलता है नवनीत।
उसी भाव से मन्त्र यह साधक करे ग्रहीत।।68।।

इमं मन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा शिष्यस्तद्गतमानसः।
तदुक्तेनैव मार्गेण जपेन्नित्यमतन्द्रितः॥69॥

अलसभाव को त्याग, तज, अन्यत् क्रिया-कलाप।
हर मुमुक्षु साधक करे, प्रणव मंत्र का जाप।। 69।।

पञ्चमः पटलः

देव्युवाच

भगवन् सर्वलोकेश सर्वज्ञ परमेश्वर।
गुरोर्लब्ध्वा जपेन्मन्त्रमित्युक्तं भवताऽनघ॥1॥

गुरू से लेकर मंत्र यह, करें शिष्य नित जाप।
ऐसा बोला आपने, हे प्रभुतर! निष्पाप॥1॥

गुरुस्तु कीदृशः प्रोक्तः किं वा शिष्यस्य लक्षणम्।
उपदेशः कथं ज्ञेयः सर्वमेतद् वद प्रभो॥2॥

हो जिनके सम्मिलन से, दोनों का कल्याण।
प्रभु! ऐसे गुरू, शिष्य की बतलाएँ पहचान॥2॥

शिव उवाच

सम्यगुक्तमिदं देवि निदानमखिलाध्वनाम्।
वक्ष्याम्येतद् विशेषेण श्रृणुष्व सुसमाहिता॥3॥

उचित आपका प्रश्न है, बोले महिम महेश।
सब शास्त्रों के हेतु हैं सद्गुरू के उपदेश॥3॥

गुरुलक्षणम्

सत्कलां प्रजपन् शान्तः सत्यवागनहङ्कृतिः।
निर्मत्सरो निरुत्सेकः कामादिगुणवर्जितः॥4॥

गुरू वह, अक्षरब्रह्म का जो नित करता जाप।
नहीं काम, क्रोधादियुत् जिसके क्रिया–कलाप॥4॥

स्त्रीसङ्गरहितो दान्तः समस्तागमपारगः।
वाग्मी गभीरः सन्तुष्टः प्रगल्भः करुणास्पदः॥5॥

ज्ञाता, सकरूण, वाग्मी, जित इन्द्रिय, गम्भीर।
प्रातिभ, सन्तोषी, कभी होता जो न अधीर॥5॥

अधीतवेदवेदाङ्गः सर्वस्मृतिषु कोविदः।
पुराणसंहितावक्ता तदर्थप्रतिपादकः॥6॥

धर्मसंहिता, शास्त्र का रखता है जो ज्ञान।
जिसकी वाणी, प्राण में, विलसित वेद, पुराण॥6॥

मन्त्रशास्त्रकृताभ्यासो मन्त्रोद्धारविधानवित्।
शिवभक्तः शिवध्यानी गुरुभक्तो गुरुप्रियः॥7॥

वह गुरू जिसके चित्त में, निज गुरू के प्रति भक्ति।
शिव के प्रति भी जो, शुभे, रखता है अनुरक्ति।।7।।

शिवैकाहितचित्तश्च शिवलिङ्गार्चनापरः।
सम्प्रदायविशेषज्ञः शिवभक्तजनप्रियः॥8॥

दत्तचित्त हो जो, प्रिये, पूजन करता नित्य।
अनुभव, जो उपदेश में, करता है लालित्य।।8।।

सदाचारैकनिरतः सर्वत्र समदर्शनः।
एवमादिगुणोपेतो गुरुरित्यभिधीयते॥9॥

सदाचार, समदर्शिता जिसकी शिष्ट विशिष्ट।
वह ही ज्ञानी गुरू जिसे नहीं सताती क्लिष्टि।।9।।

गुरुप्रभावः

गुरुरेव महादेवः साक्षात् सर्वजगत्प्रभुः।
अन्यथा तं न जानीयात् परतत्त्वावबोधकम्॥10॥

महादेव है वही गुरू जग का पालनहार।
उसे न मानव समझकर, करें इतर व्यवहार।।10।।

अहमेव गुरुर्भूत्वा दीक्षाशिक्षाविधानतः।
भक्तान् मदेकशरणांस्तारयामि भवाम्बुधेः॥11॥

गुरू बन मनुजों संग स्वयं मैं करता व्यवहार।
हर शरणागत को करूं, भवसागर के पार।।11।।

गुरुरूपं समाश्रित्य सोऽहमेव महेश्वरि।
गृह्णामि तत्कृतां पूजां यतस्ते मामुपाश्रिताः॥12॥

मैं पूजा स्वीकारता, गुरू का धार स्वरूप।
शरणागति पड़ने नहीं देती दुख की धूप।।12।।

तस्माद् द्रोहो न कर्तव्यो गुरुमूर्तेर्ममापि च।
मत्प्रसादमना देवि गुरुमेव समाश्रयेत्॥13॥

द्रोह न करना चाहिए, गुरू–विग्रह के साथ।
प्रसन्नता देता सदा, शिर पर गुरू का हाथ।।13।।

सर्वतत्त्वैकनिलयं सर्वाधारमनूपमम्।
षड्भावरहितं दिव्यमुक्तं श्रीगुरुलक्षणम्॥14॥

आश्रय जो हर तत्व का, अनुपम सर्वाधार।
दिव्यरूप गुरू ही हरे, सारे मनोविकार।।14।।

निरालम्बं निराधारं निर्विकल्पं निरामयम्।
निर्द्वन्द्वं नित्यसंसिद्धमुक्तं श्रीगुरुलक्षणम्॥15॥

व्याधि, द्वन्द्व, आधार से रहित, शुद्ध चित्ति–युक्त।
वह ही गुरू, जो है प्रिये, मद, मत्सर से मुक्त।।15।।

निदानं सर्वविद्यानां सर्वभूतनियामकम्।
परात् परतरं सूक्ष्ममुक्तं श्रीगुरुलक्षणम्।
तस्मात् तत्पादयुगलमाश्रित्यास्ति जगत्त्रयम्॥16॥

क्षुद्र बुद्धि का नियन्ता, हरता जो भव–शोक।
पादपद्म में हैं टिके जिसके तीनों लोक।।16।।

गुरुशरीरे तीर्थादीनां स्थितिः

पादाङ्गुष्ठे समस्तानि तीर्थानि निवसन्ति हि।
गुल्फे तस्य महादेवि तिष्ठन्ति गणतारकाः॥17॥

जिसके पादांगुष्ठ में करते तीर्थ निवास।
टखनों में गणदेवता, तारामण्डल खास।।17।।

पादाधश्चाब्धयः सर्वे पादोर्ध्वे कुलपर्वताः।
षट्त्रिंशत्तत्त्वनिचयो वसत्येतस्य जानुनोः॥18॥

जिसके घुटनों में बसे तत्व–वृन्द छत्तीस।
चरण–तले सागर सकल, ऊपर गरिम गिरीश।।18।।

एवं सर्वाश्रयीभूतं सर्वकारणकारणम्।
गुरुरूपमिदं ध्येयं सर्वतत्त्वोपरि स्थितम्।।19।।

जिसकी क्षमता, योग्यता, नहीं कभी परिमेय।
सबका आश्रयस्थल वही, गुरू साधक को ध्येय।।19।।

पाशबद्धः पशुर्गुरुं समाश्रयेत्

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं पशवः परिकीर्तिताः।
शिवः पतिरिति प्रोक्तः पाशः कर्ममलादिकम्।।20।।

तृण से लेकर ब्रह्म तक पशु सब जीव-समूह।
इन सबके पति शिव करें, छिन्न मलों के व्यूह।।20।।

अतः पशुरसौ सर्वः पाशमुक्तः पतेर्बलात्।
समाश्रयेद् गुरुवरं ततो मोक्षमवाप्नुयात्।।21।।

जब आते पति की शरण, प्रत्यक्ष या परोक्ष।
जीव, जगत के ये सभी, तब पाते हैं मोक्ष।।21।।

सङ्गिरत्यखिलं तत्त्वं शिष्याय परमार्थतः।
अतो गुरुरिति प्रोक्तो गुरुत्वादपि पार्वति।।22।।

करा ज्ञान हर तत्व का, साध सिद्ध परमार्थ।
गौरव पा प्रिय, गुरू बना, समझो यही यथार्थ।।22।।

सूर्योदये तमो यद्वद् विनाशमुपयाति हि।
गुरुदर्शनतस्तद्वत् पापजालं प्रणश्यति।।23।।

चीरे ज्यों रवि, हो उदित, अन्धकार का व्यूह।
त्यों गुरू-दर्शन से विनश, जाते पाप-समूह।।23।।

संसारदावदहनज्वाला येन विनाशिता।
कटाक्षामृतवर्षेण को हि तत्सदृशो भवेत्।।24।।

अनुकम्पामृत से सरस करे सृष्टि, रह मौन।
उस गुरू की तुलना भला, कहो करे फिर कौन।।24।।

तस्मान्मुमुक्षुः सेवेत गुरुमेवातिभक्तितः।
स एव वन्दनीयश्च सर्वदा नहि संशयः॥25॥

मोक्षकामि, गुरू की करें सेवा भक्तिप्रणीत।
वन्दन, आराधन, उसे देता निश्चित, जीत ।।25।।

अन्धो यथार्थजातं च द्रष्टुं समभिकाङ्क्षति।
गुरुं विना तथा मुक्तिं प्राप्तुमिच्छति मूढधीः॥26॥

दृष्टि–लालसा अन्ध की ज्यों जाती बेकार।
सद्‌गुरू बिन वैसे प्रिये, मूढ़ न पाता पार।।26।।

सामान्यगुरुमाश्रित्य ज्ञानमिच्छति मूढधीः।
भिन्ननावाश्रितः सोऽपि महाब्धिं सन्तरिष्यति॥27॥

ज्ञानामृत का, गुरू बिना, मूढ़ न पाता बिन्दु।
टूटी नौका से यथा पार न होता सिंधु।।27।।

अतो हि सद्गुरुं प्राज्ञो ज्ञानार्थी संश्रयेन्नरः।
एतादृशं गुरुं ज्ञात्वा शुश्रूषां वै समाचरेत्॥28॥

जाते सद्‌गुरू की शरण, ज्ञान–गुणी जिज्ञासु।
सेवा श्रद्धा से करें, तुष्ट, सुभक्ति–पिपासु।।28।।

कुटुम्बस्यैक एव गुरुः कर्तव्यः

पितृभ्रातृकलत्राणां पुत्रादीनां तथैव च।
दीक्षाशिक्षाविधानार्थमेक एव गुरुर्भवेत्॥29॥

शिक्षा–दीक्षा के लिए, एकमेव गुरू मान्य।
हो पूरे परिवार में, भक्ति–भाव–प्राधान्य।।29।।

गुरवो यत्र बहवो भवन्त्यन्योन्यभेदतः।
वीरशैवसदाचारस्तत्र नास्तीति निश्चयः॥30॥

गुरूओं के वैविध्य से क्षर जाता सत्कार।
बाधित प्राण–प्रवाह से क्षति पाता परिवार।।30।।

शिष्यस्वरूपम्

अथ शिष्यस्वरूपं च वक्ष्ये संक्षेपतः शृणु।
शुचिः सुशीलो धर्मिष्ठः सत्यवाग् विजितेन्द्रियः।
अहङ्कारविनिर्मुक्तो रागद्वेषादिवर्जितः॥31॥

सदाचारि, धर्मिष्ठ हो तन से मन से शिष्य।
उज्ज्वल वह ही कर सके, गुरु के निकट भविष्य।।31।।

गुरुभक्तो जितक्रोधो गुर्वाज्ञापरिपालकः।
विषयासङ्गनिर्मुक्तो विनिर्जितमदाष्टकः॥32॥

अष्ट मदों से हो रहित, विषयासक्त न लेश।
निर्क्रोधी गुरुभक्त हो जिसका चित्त प्रदेश।।32।।

का वा गतिर्ममेत्येवं ध्यायमानो दिवानिशम्।
एवं गुणान्वितं शिष्यं परीक्ष्य गुरुरादरात्।
शिक्षयेत् तस्य वै चित्तं यथा भवति निर्मलम्॥33॥

गति के प्रति चिन्ता रखे जो साधक दिन–रात।
प्रणत परीक्षित चित्त में विलसे पुण्य प्रभात।।33।।

शिष्याय शिवाचारोपदेशः

ततः प्रसन्नमनसं शिष्यमालोक्य देशिकः।
समादिशेच्छिवाचारं भूतिधारणपूर्वकम्॥34॥

अभिरोचित उसका करें, गुरु भस्म से ललाट।
शिवाचारि उपदेश के फिर सिखलाएं पाठ।।34।।

दत्त्वा विभूतिं भक्तेभ्यो गन्धपुष्पाक्षतैः सह।
ताम्बूलानि च वस्त्राणि यथायोग्यं प्रदापयेत्॥35॥

अक्षत, पुष्प, सुगन्ध से, भक्तों के अनुकूल।
गुरु भी सत्कारित करे, दे दुकूल, ताम्बूल।।35।।

ततः शिष्यस्य फालादिस्थानेषु च यथाक्रमम्।
विभूतिधारणं कुर्यात् स्वयमेव गुरूत्तमः॥36॥

शास्त्रों में उपदेश के जैसे विहित विधान।
अंगों पर गुरु शिष्य के, रचे, विभूति–विहान।।36।।

रुद्राक्षान् धारयित्वाऽथ शिवज्ञानैकसाधकान्।
शास्त्रोक्तविधिना देवि शिरोग्रीवाकरादिषु॥37॥

फिर शिर, ग्रीवा, हाथ पर, सज्ज करें रुद्राक्ष।
जो शिवता की प्राप्ति के हैं प्रत्यक्ष गवाक्ष।।37।।

निषिञ्चेत् पञ्चकलशपूरितैस्तीर्थवारिभिः।
तथाऽभिमन्त्रितैः शैवैर्मन्त्रैः पञ्चाक्षरेण च॥38॥

पंच घटों में आहरित, हो तीरथ-जल नेक।
अभिमन्त्रण के साथ गुरू करें पुण्य अभिषेक।।38।।

गुरुः पूर्वमुखो भूत्वा शिष्यं प्रत्यङ् मुखस्थितम्।
कृपादृष्ट्या समालोक्य ततो न्यासं समाचरेत्॥39॥

प्राची अभिमुख बैठकर, लखे वटुक सायास।
फिर तन पर, गुरू, शिष्य के करें मंत्र का न्यास।।39।।

प्रथमं मातृकान्यासमध्वन्यासमतः परम्।
कलान्यासं ततः कुर्यान्मन्त्रन्यासमतः परम्॥40॥

प्रथम मातृका, षडध्वनि, तद्वत् कला-विधान।
पुनः न्यास कर मंत्र का, दे उसको वरदान।।40।।

एवं न्यासविधिं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्।
उपादिशेन्महामन्त्रं तथा शैवं षडक्षरम्॥41॥

पूरी करके न्यास-विधि, साधे प्राणायाम।
फिर ले जाए शिष्य का, करे लिंग-सँस्कार।।41।।

इष्टलिङ्गसंस्कारः

एवं मन्त्रमुपादिश्य शिष्याङ्गमपि देशिकः।
शिवाङ्गमिति संचिन्त्य लिङ्गसंस्कारमाचरेत्॥42॥

यूं उपदेशित मन्त्र सँग कर प्रीतिक व्यवहार।
दीक्षागुरू निज शिष्य का, करे लिंग-सँस्कार।।42।।

लिङ्गं हस्ते गृहीत्वा तु भावदृष्ट्या च देशिकः।
संस्थाप्य लिङ्गे शिष्यस्य मस्तकस्थां कलां पराम्॥43॥

लिंग हाथ में ले उसे, दूषण से उन्मोच।
सँस्कारे शिव मन्त्र से परमा कला विरोच।।43।।

लिङ्गे प्राणं विनिक्षिप्य प्राणे लिङ्गं च शाम्भवम्।
तल्लिङ्गं स्थापयेच्छिष्ये सम्यग् ध्यात्त्वैकभावतः॥44॥

निक्षेपण कर प्राण का, मान अंग को इष्ट।
लिंग शांभव शिष्य में देशिक करें प्रतिष्ठ।।44।।

ध्यात्रे शिष्याय तल्लिङ्गं धारयित्वा निरूपयेत्।
वीरमाहेश्वराचारनिष्ठां परमदुर्लभाम्॥45॥

शिवलिंगी महिमा अमित, शिष मन राखे गोय।
माहेश्वर आचार में चित्ति नित दीक्षित होय।।45।।

वीरमाहेश्वराचारः

दत्तं लिङ्गमिदं वत्स न कदाचिद् वियोजय।
प्राणवद् रक्षणीयं हि प्राणलिङ्गमिदं तव॥46॥

इष्टलिंग तन से कभी करना वत्स न दूर।
रक्षणीय यह प्राणवत्, महिमा से भरपूर।।46।।

उत्तमाङ्गे गले कक्षे तथा वक्षःस्थलेऽपि वा।
करस्थलेऽपि वा नित्यं सावधानेन धारय॥47॥

सावधान धारण करो, वक्ष कण्ठ, निज शीश।
इष्टलिंग यह सिद्धि का है गीर्वाण गिरीश।।47।।

प्रमादात् पतिते लिङ्गे भग्ने चोरादिभिर्हृते।
पीठादुत्क्रमिते वापि तूर्णं प्राणं परित्यज॥48॥

खण्डित, चौरित हो अगर, जाय लिंग यह ईष्ट।
प्राण–त्याग ही शिष्यवर, है तब तुम्हें अभीष्ट।।48।।

मया नियमिताचारे प्रसादे पादवारिणि।
जङ्गमे निजलिङ्गैक्ये वर्ततामप्रमादतः॥49॥

समाचर्य उपदेश संग, चरणोदकिय प्रसाद।
ऐक्यभाव धारण करो, त्यागो सकल प्रमाद।।49।।

वीरशैवव्रते लुप्ते येन केनापि हेतुना।
प्रायश्चित्तं तदा वत्स प्राणत्यागो विधीयते॥50॥

वीरशैव व्रत का अगर, कभी जाय हो अन्त।
प्रायश्चित के रूप में जीवन तजो तुरन्त।।50।।

एवं वदेद् वीरशैवनिष्ठां शिष्याय देशिकः।
तदाप्रभृति शिष्यस्तु तदुक्तं चैव साधयेत्॥51॥

वीरशैव निष्ठादि के विषयक ललित ललाम।
तत्परता से पाल्य हैं ये उपदेश तमाम।।51।।

वीरशैवनिष्ठा

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञां तत्पादार्पितमानसः।
शरीरमर्थं प्राणं च देवि तस्मै निवेदयेत्॥52॥

करें शिष्य गुरू की सतत, सेवा सर्व प्रकार।
तन, मन, धन, निज प्राण, शिष, गुरू पर दे बलिहार।।52।।

मल्लिङ्गधारिणो ये च भूतिरुद्राक्षसंयुताः।
ये वै मदेकशरणास्तान् दृष्ट्वा प्रणमेन्मुदा॥53॥

शैवचिह्न–धर यदि कहीं उसे मिलें छबिधाम।
प्रीति प्रसादित भाव से सबको करे प्रणाम।।53।।

उपचर्य च तान् भक्तो यथाशक्ति समर्चयेत्।
तोषयेत् सततं भक्त्या भोजनाच्छादनादिभिः॥54॥

यथाशक्ति सेवा करे, दे भोजन–वस्त्रादि।
साधे शिष सविकल्पिनी, व्यवहारिणी समाधि।।54।।

वीरशैवः क्रमेणैवमाचरेद् गुरुशासनम्।
प्राप्नोति सुखमारोग्यमिहामुत्र सुदुर्लभम्॥55॥

वीरशैव के जो करें पालित गुरू–आदेश।
तीनो लोकों में उसे दुख न मिलें लवलेश।।55।।

अनेकजन्मसम्प्राप्तं कर्म चागामि सञ्चितम्।
प्रारब्धमपि चैतस्य तत्क्षणादेव नश्यति॥56॥

वीरशैव के व्रती को कर्मी न होता कष्ट।
उसके जन्मोंजन्म के पातक होते नष्ट।।56।।

ब्रह्मराक्षसवेतालकूष्माण्डाद्याः सुदारुणाः।
वीरमाहेश्वरं दृष्ट्वा पलायन्ते भयातुराः॥57॥

देख वीर माहेश्वरी, तेजस् गन्ध–पराग।
वेतालादिक भयानक प्राणी जाते भाग।।57।।

यस्तु लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रं जपेल्लिङ्गं च पूजयेत्।
वीरशैवपरो देवि स धन्यः पुरुषो भुवि॥58॥

ऐसे गुरु–शिष, परस्पर होते हैं अभिमन्य।
जिनको पाकर लोक भी, हो जाते हैं धन्य।।58।।

एवमुक्तं समासेन लक्षणं गुरुशिष्ययोः।
उपदेशविधानं च ततः किं प्रष्टुमिच्छसि॥59॥

जिज्ञासा गुरु–शिष्य की कर दी मैंने शान्त।
कौन प्रश्न, तुमको, प्रिये, करता अब विभ्रांत।59।।

षष्ठः पटलः

देव्युवाच

गुरुशिष्यस्वरूपं तु श्रुतं देव दयानिधे।
लिङ्गं तु कीदृशं देव तस्य पूजा कथं भवेत्॥
फलं वा किमिति प्रोक्तं तत्सर्वं ब्रूहि मे प्रभो॥1॥

शिष्य और गुरू की प्रभो, मुझे हुई पहचान।
लिंग, रूप, पूजन, फलन का अब दीजै ज्ञान।।1।।

शिव उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञे यत्त्वया परिचोदितम्।
तत्सर्वं हि समासेन वक्ष्यामि शृणु पार्वति॥2॥

धन्य देवि प्रज्ञानिधिः, उचित तुम्हारा प्रश्न।
सुनो ध्यान दे, शान्त हो मन जिज्ञासु सतृष्ण।।2।।

लिङ्गलक्षणम्

नादरूपः शिवः साक्षाल्लिङ्गमित्यभिधीयते।
तत्पीठिका महाशक्तिः सा च वै बिन्दुरूपिणी।
तयोः सम्मेलनाद् देवि कला तत्र प्रतिष्ठिता॥3॥

नाद–बिन्दु, लिंग, पीठिका का जब मिले मजिष्ठ।
तब उनमें बसरस प्रिये, होती कला प्रतिष्ठ।।3।।

सा कला परमा सूक्ष्मा व्याप्ता सर्वत्र सर्वदा।
तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं नादबिन्दुकलात्मकम्॥4॥

नाद– बिन्दु के सँग कला धार समन्वित रूप।
परम सूक्ष्म चित् वृत्त को देती सौख्य अनूप।।4।।

लिकारो लयबुद्धिस्थो बिन्दुना स्थितिरुच्यते।
गकारात् सृष्टिरित्युक्ता लिङ्गं सृष्ट्यादिकारणम्॥5॥

लय उद्भावक जान लो, है लिंग का लिकार।
जो गकार संग मिल करे, सृष्टि, स्थिति, संहार।।5।।

लीनं प्रपञ्चरूपं हि सर्वमेतच्चराचरम्।
सर्गादौ गम्यते यस्मात् तस्माल्लिङ्गमुदीरितम्॥6॥

इसी लिंग से उपज कर सकल चराचर सृष्टि।
लय हो जाती इसी में, करके मंगल वृष्टि।।6।।

लिङ्गं शैवमिदं साक्षाच्छिवशक्त्युभयात्मकम्।
ध्यातव्यमर्चनीयं च भुक्तिमुक्तिफलेच्छुना।।7।।

इसी रूप में राजते वन्दनीय शिव–शक्ति।
भुक्ति–मुक्ति–साधक इन्हें पूजें, भजें सभक्ति।।7।।

अतो यजेत् सदा लिङ्गं सर्वकारणकारणम्।
निरामयं निराकारं निर्गुणं निर्मलं शिवम्।
ज्योतिर्मयं निरालम्बं सर्वाधारमनूपमम्।।8।।

भोग, मोक्ष का है नहीं कोई अन्य उपाय।
निरालम्ब रह स्वयं यह, सबकी करे सहाय।।8।।

लिङ्गमाहात्म्यम्

तस्यैव तेजसा देवि चन्द्रादिग्रहतारकाः।
प्रकाशन्ते नियमिताः कालक्लृप्त्या दिवानिशम्।।9।।

शशि, तारागण, नवग्रह पाकर इनसे ज्योति।
सृष्टि–प्रकाशन की करें अहोरात्र उद्योति।।9।।

अस्य भीत्या महान् वायुः सदा वाति जगत्त्रये।
सूर्यश्चोदेति नियतो वह्निरुष्णकरः सदा।
चन्द्रश्च शीततां याति यमश्च परिधावति।।10।।

मान शक्ति, सामर्थ्ययुत् ज्योतिर्लिंग की भीति।
पंचभूत, शशि, रवि, नखत, रखें कर्म से प्रीति।।10।।

तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
ध्यायते यः सदा देवि स मुक्तो नात्र संशयः।।11।।

सत्, चित् का, आनन्द का, ज्योतिर्लिंग है गेह।
यह ही बन्धन काटता, सबके निस्संदेह।।11।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नमनन्तं विश्वतोमुखम्।
सूरयस्तत्प्रपश्यन्ति निर्मलं परमं पदम्।।12।।

जो अव्यक्त होकर हुआ, करता जग में व्यक्त।
पाते हैं दर्शन सुखद, केवल सच्चे भक्त।।12।।

लिङ्गशब्दस्य यौगिकार्थकथनम्

देवदानवगन्धर्वा वेदाः साङ्गाः सनातनाः।
उत्पद्यन्तेऽत्र कल्पादौ कल्पान्ते च लयं गताः॥13॥

देवशक्तियां इसी से होती हैं उत्पन्न।
कल्पान्ते फिर इसी में होतीं वे अवसन्न।।13।।

दक्षिणाङ्गात् ततो ब्रह्मा विष्णुर्वामाङ्गतस्तथा।
समस्तवेदजननी गायत्री हृदयादभूत्॥14॥

दक्षिणांग से चतुर्मुख, विष्णु धाम से जात।
गायत्री के जन्म के, हृदय खिलाता पात।।14।।

वेदाः शिरः समुद्भूताः साङ्गोपाङ्गाः सहस्त्रशः।
उत्पद्यते लीयते च लिङ्गेऽस्मिन् सचराचरम्॥15॥

अंग, उपांगों के सहित, शिर सृजता है वेद।
सृष्टि, प्रलय का हेतु यह, इसमें रंच न भेद।।15।।

लिङ्गस्यैव परतत्त्वत्त्वकथनम्

यल्लिङ्गमपरिच्छेद्यमादिमध्यान्तवर्जितम्।
परानन्दं चिदाकारं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्॥16॥

कृष्णपिंगली रूप में परमानन्दी मान।
परम पुरुष–सा योगिगण करते इसका ध्यान।।16।।

हिरण्यपतिमीशानं पशूनाम्पतिमीश्वरम्।
ऊर्ध्वरेतमुमाकान्तं सर्वविद्याधिनायकम्॥17॥

ऊर्ध्वरेत, ईशान प्रभु! हिरण्यमय प्रथमेश।
पशु–पति, विद्याधीश तुम, स्वामि महाकालेश।।17।।

ब्रह्मादिपतिमद्वन्द्वं नीलकण्ठं सदाशिवम्।
विश्वाधिकं महादेवं जगद्व्यापकमच्युतम्॥18॥

व्याप्त सकल संसार में स्वामी द्वन्द्वातीत।
तर्क, प्रमाणातीत, प्रिय दुष्कर इसकी प्राप्ति।।18।।

परात्परतरं तत्त्वमक्षरं सदसच्च तत्।
अप्रतर्क्यममेयं च व्योमकेशं दुरासदम्॥19॥

परतत्वों से भी परे, विभु स्वरूपिणी व्याप्ति।
तर्क, प्रमाणातीत, प्रिय दुष्कर इसकी प्राप्ति।।19।।

भर्गं वरेण्यं यद्रूपं तल्लिङ्गमिति कीर्तितम्।
तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सदा ध्यायन्ति योगिनः।।20।।

इसी लिंग का प्रकाशक, है सविता का तेज।
मन में रखते योगिगण जिसको सदा सहेज।।20।।

त्रैगुण्यविषयान् देवान् त्यक्त्वा लिङ्गं च निर्गुणम्।
भजन्ति परमं धाम शैवं विश्वादिकारणम्।।21।।

चालित रज, तम, सत्व से देवों के अतिरिक्त।
परम धाम यह लिंग यति, करें भक्ति से सिक्त।।21।।

सर्वमन्यत् परित्यज्य तृणवद् देवतान्तरम्।
शैवं लिङ्गं सदा ध्यायेत् सर्वसिद्धिषु संस्थितम्।।22।।

विद्यमान हर सिद्धि में, अपरिमेय बुद्धेय।
शिवलिंग ही है सर्वदा साधकजन का ध्येय।।22।।

लिङ्गार्चनविधिः

अथ वक्ष्ये महादेवि लिङ्गार्चनविधिं परम्।
आदौ ध्यात्वा महादेवं त्रियम्बकमुमापतिम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं दिव्यलिङ्गोपरि स्थितम्।।23।।

लिंग-पूजा की श्रेष्ठ विधि, मैं कर रहा बखान।
सर्व प्रथम साधक करें, त्रयलोचन का ध्यान।।23।।

सर्वव्यापकमीशानं पवित्रं .पुष्टिवर्धनम्।
अर्चयेदान्तरैः पुष्पैर्मानसैरुपचारकैः।।24।।

सर्वव्यापि सर्वेश का कर मानस उपचार।
आन्तर पुष्पों से करे, पूजन भली प्रकार।।24।।

अहिंसा चेन्द्रियजयः सर्वभूतदया परा।
क्षमा ध्यानं तपो ज्ञानं सत्यं चैव तथा परम्।
एभिः पुष्पैरहिंसाद्यैर्मानसैः शिवमर्चयेत्।।25।।

दया, जितेन्द्रियता, क्षमा, ज्ञान, ध्यान अनुकूल।
सत्य, अहिंसा, त्याग, तप, ये हैं अन्तर फूल।।25।।

कर्मयज्ञस्तपोयज्ञो जपयज्ञस्तथापरः।
ध्यानयज्ञो ज्ञानयज्ञः पञ्चयज्ञा इमे स्मृताः।
एतेषामपि पञ्चानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम्।।26।।

धर्मशास्त्रों में विहित पांच यज्ञ हैं प्रेष्ठ।
जप, तप कर्मण, ध्यान में ज्ञानयज्ञ अति श्रेष्ठ।।26।।

कर्मयज्ञो द्विधाः ज्ञेयः सकामाकामभेदतः।
सकामे तु फलं भुक्त्वा जायते भुवि पूर्ववत्।
निष्कामेऽपि वरं ज्ञानं लब्ध्वा मोक्षमवाप्नुयात्।।27।।

कर्मयज्ञ के रूप दो, हैं सकाम, निष्काम।
प्रथम करे, फिर जन्म ले, दूजा मुक्ति ललाम।।27।।

हिंसादिदोषरहितो रागादिगुणवर्जितः।
तपोयज्ञो महादेवि मोक्षैकफलसाधकः।।28।।

साधक को दे मोक्षफल, एकमात्र तप-यज्ञ।
प्रिये, भक्त, इस नियम का हो न कदापि अवज्ञ।।28।।

अष्टैश्वर्यप्रदा पूजा योगाद्यं स्वर्गसाधनम्।
पापहारी जपः प्रोक्तो ज्ञानं ध्यानं च मोक्षदम्।।29।।

ज्ञान, ध्यान देते प्रिये, साधक-जन को मोक्ष।
अणिमादिक ऐश्वर्य भी, प्रत्यक्ष या परोक्ष।।29।।

निष्कामकर्मकर्तृणां श्रौतस्मार्तानुसारतः।
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञाने ध्याने भवेन्मतिः।
केवलं कर्मनिष्ठानां तद्वार्ताऽपि न जायते।।30।।

ज्ञान, ध्यान में बुद्धि है सदा न देती साथ।
श्रौतस्मातों के नियम रोचित करते माथ।।30।।

बहिर्यज्ञरतानां तु देवाः पाषाणमृण्मयाः।
अन्तर्यागवतां देवि हृदयस्थः सदाशिवः।।31।।

वाह्याडम्बर के प्रिये, देव मात्र पाषाण।
अन्तर के हृदथस्थ शिव, सदा करें कल्याण ।।31।।

ज्ञानं ध्यानं न यस्यास्ति स न वेत्ति परं शिवम्।
यद्वदर्थांस्तु जात्यन्धो नहि पश्यति पार्वति॥32॥

यथा अन्ध भौतिक नहीं सकता देख पदार्थ।
ज्ञान–ध्यान वर्जित तथा विफल करें परमार्थ।।32।।

तस्माद्यज्ञादिकं बाह्यं त्यक्त्वा स्वर्गादिसाधनम्।
गुरोर्लब्ध्वा परं ज्ञानं ध्यानयोगरतो भवेत्॥33॥

अतः वाह्य सब छोड़कर गुरु का प्रिय मतिमन्त।
ध्यान योग अभ्यास में साधक लगे तुरन्त।।33।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
ध्यानयोगस्य चैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥34॥

सहसों विश्रुत–मखों से है जो अधिक महान।
ध्यान–योग की सोल्हवीं कला सौख्य की खान।।34।।

शिवज्ञानामृतं पीत्वा भक्त्या परवशं गतः।
निवेशयेच्छिवे चित्तं संयतात्मा निराकुलः॥35॥

ज्ञानामृत का पान कर, सब व्याकुलता छोड़।
चित्त लगा दे ध्यान में, साधक भक्ति निचोड़ ।।35।।

वीरशैवक्रमः

पूजादौ तु शिवं ध्यात्वा जप्त्वा पञ्चाक्षरं मनुम्।
ततः सम्पूजयेद् देवं वीरशैवक्रमो भवेत्॥36॥

पूजन करने से प्रथम करे मन्त्र का जाप।
तदनन्तर शिव, शैव के अन्यत् इतर कलाप।।36।।

सज्जिकान्तः स्थितं लिङ्गं स्पृष्ट्वा मन्त्रं त्रिरुच्चरन्।
तत्र ध्यात्वा महादेवं पुष्पं मूलेन निक्षिपेत्॥37॥

मन्दिर के अन्तः स्थित शिवजी का कर ध्यान।
मन्त्रपाठ संग इष्टलिंग, पूजे जन सविधान।।37।।

शिवो रुद्रः पशुपतिर्नीलकण्ठो महेश्वरः।
हरिकेशो विरूपाक्षः पिनाकी त्रिपुरान्तकः।
शम्भुः शूली महादेवो नामान्येतानि वै क्रमात्॥38॥

साधक ले सबसे प्रथम शिव के बारह नाम।
आधायक परमत्व के, दायक सुफल ललाम।।38।।

प्रणवादिनमोऽन्तानि समुच्चार्य पृथक् पृथक्।
पुष्पैः सम्पूज्य तल्लिङ्गं करपीठे निवेशयेत्॥39॥

लगा चतुर्थ विभक्ति शुभ ओंकार के साथ।
पुष्प चढ़ाये इष्ट पर, झुका विनय से माथ।।39।।

अरणिस्थो यथा वह्निर्मथनादवगम्यते।
तथाऽभिव्यज्यते लिङ्गे ध्यानयोगाच्छिवः स्वयम्॥40॥

अग्नि, अरणि के काष्ठ में होती यथा सशक्त।
तथा इष्टलिंग में शुभे, शिव होते अभिव्यक्त।।40।।

लिङ्गसंस्थो भवेन्मन्त्रो मन्त्रसंस्थः सदाशिवः।
उभयोरैक्यभावस्तु वीरशैवे विधीयते।
ज्ञात्वैवं प्राणलिङ्गं च कुर्यादष्टविधार्चनम्॥41॥

मन्त्र स्थित है इष्ट में शिव से मन्त्र अमुक्त।
युगल अष्टविध पूज्य यूं, ज्यों वेद संग निरुक्त।।41।।

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः।
ताम्बूलसहितैः प्रोक्तमष्टधा च समर्चनम्॥42॥

धूप, दीप, नैवेद्य, जल, गन्धाक्षत, ताम्बूल।
अष्टमांग प्रिय पुष्प है, पूजन के अनुकूल ।।42।।

करस्थलगतं लिङ्गं वामतः कृतगोमुखम्।
कनिष्ठानामिकाग्राभ्यां शिवलिङ्गं च गोमुखम्।
अङ्गुष्ठाग्रेण चैवं हि संस्पृशेदर्चनाविधौ॥43॥

बाम पक्ष में इष्ट का गोमुख रखें सयत्न।
अग्रभाग, अंगुष्ठ के हो स्पर्श का प्रयत्न।।43।।

भावप्राणेष्टलिङ्गानि पूजयेदेकभावतः।
पृथग्भावं न कुर्वीत प्राणलिङ्गपरो यतः॥44॥

भाव, इष्ट या प्राण लिंग, एक रूप त्रय नाम।
पूजक पूजे धार उर, प्रणत भक्ति अभिराम।।44।।

स्नापनं प्रथमं कृत्वा ततो गन्धानुलेपनम्।
अक्षतांश्च समर्प्याथ पुष्पैः सम्पूजयेत् ततः॥45॥

स्नात इष्टलिंग में करें विधिवत् लेपित गन्ध।
अर्पित अक्षत पुष्प हों, हट जाएं भव–बन्ध।।45।।

निवेदयित्वा नैवेद्यं ततस्ताम्बूलमर्पयेत्।
एवं समर्चनं कुर्यादिष्टलिङ्गस्य पार्वति॥46॥

तदनन्तर नैवेद्य हों, फिर रूचिकर ताम्बूल।
मानस भी निर्मल रखे, पोंछ विकृति की धूल।।46।।

तद्ध्यानं मनसा यत्र प्राणलिङ्गार्चनं मतम्।
मनोवृत्तिलयस्तत्र भावलिङ्गस्य पूजनम्॥47॥

यही प्राण लिंगार्चन है साधक का लक्ष्य।
राग–वृत्तियों से रहे चित्तवृत्ति संरक्ष्य।।47।।

स्नानं पुष्पं च नैवेद्यं प्रदक्षिणनमस्क्रिये।
एभिः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेल्लिङ्गमन्वहम्॥48॥

पूजन–मध्य प्रयुक्त हों ये पांचों उपचार।
और न करना चाहिए इसमें सोच–विचार।।48।।

स्नानमुद्वर्तनं चैव वस्त्रभूषाश्च चन्दनम्।
भक्ष्यभोज्यादिकं वापि फलं पुष्पं च सौरभम्॥49॥

स्नान, वस्त्र, आभरण अपि, उबटन, खाद्य पदार्थ।
चन्दन, सौरभ, पुष्प, फल, साथ रखें निःस्वार्थ।।49।।

एवमादीनि वस्तूनि शिवायादौ निवेद्य च।
स्वयं ततोऽनुभुञ्जीत प्रसादग्राहको मतः॥50॥

करें निवेदित इष्ट को, सर्वप्रथम निर्बाध।
तदुपरान्त पूजक स्वयं पाये शिवप्रसाद।।50।।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि शाङ्करि।
पूजयेन्नियतं लिङ्गं प्राणलिङ्गपरायणः॥51॥

इष्टलिंग पूजे अवस, प्राण लिंग का भक्त।
इससे उसकी आत्मा होतीं और सशक्त।।51।।

वीरशैवलक्षणम्

एवं यः कुरुते भक्त्या प्राणलिङ्गार्चनं सदा।
वीरशैवः स विज्ञेयः सर्वशैवोत्तमोत्तमः॥52॥

प्राण लिंग को नित्य प्रति जो पूजे चित लाय।
भक्तगणों में वह व्रती वीरशैव कहलाय।।52।।

अनभ्यर्च्य न भुञ्जीत लिङ्गरूपं सदाशिवम्।
यस्त्वैवं निर्वहेद् भक्तः स वै शिष्टो मम प्रियः॥53॥

बिन विधिवत् पूजा किये, भोजन ग्रहे न रंच।
वह साधक मुझको प्रिये, प्रिय लगता सौ टंच ।।53।।

इदमत्र रहस्यं वै श्रूयतां षट्स्थलात्मकम्।
भक्तस्थलं समासीनो भूतिरुद्राक्षसंयुतः।
षडक्षरजपं कृत्वा ततो माहेश्वरस्थले॥54॥

भक्त स्थल पर धारकर भस्म और रूद्राक्ष।
फिर षडक्षरी मंत्र से रखता खोल गवाक्ष।।54।।

हस्ते कृत्वा लिङ्गमूर्तिं प्रसादिस्थलमाश्रितः।
लिङ्गं च भक्त्या सम्पूज्य प्राणलिङ्गिस्थले ततः॥55॥

वही प्रसादिस्थल पहुंच, पूजित करता इष्ट।
शिव को सर्वम् अर्प कर, हो जाए तन्निष्ठ।।55।।

कृत्वा शिवार्पणं देवि सानन्दं शरणस्थले।
ऐक्यस्थले प्रसादोपभोगतृप्तिमवाप्नुयात्॥56॥

होता शरणस्थल पहुंच वह आनन्द-निमग्न।
ऐक्यस्थल में सुख अगिन हो जाते संलग्न।।56।।

एवं समरसाद् भावादङ्गषट्स्थलयोगतः।
यः पूजयति मां देवि वीरशैवः स उच्यते॥57॥

पूजन करता भक्त जो ऐसी धार समाधि।
वीरशैव के नाम की मिलती उसे उपाधि।।57।।

लिङ्गार्चनफलम्

तस्माल्लिङ्गार्चनं कुर्याद् यथायोगमतन्द्रितः।
लिङ्गे सम्पूजिते तस्मिन् पूजिताः सर्वदेवताः॥58॥

इस विधि पूजे इष्ट जो अलसभाव को त्याग ।
उससे अन्यत् देव भी करते हैं अनुराग ।।58।।

कृत्वा षोडश दानानि यत्फलं लभते नरः।
तत्फलं समवाप्नोति लिङ्गन्यस्तैकपुष्पकः॥59॥

जो फल पाता है मनुज करके सोलह दान।
एक पुष्प भी इष्ट का, करे वही कल्याण ।।59।।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।
जपेत् पञ्चाक्षरं मन्त्रं लिङ्गं स्पृष्ट्वा विमुच्यते॥60॥

महापातकी भी अगर अपनाये यह युक्ति।
तो वह भी इस मंत्र से जाय प्राप्त कर मुक्ति।।60।।

दर्शनात् सर्वपापघ्नं स्पर्शनादखिलार्थदम्।
अर्चनान्मोक्षदं देवि लिङ्गं को वा न पूजयेत्॥61॥

इष्टलिंग काटे सभी पातक रहकर मौन।
इसकी पूजा का भला सत्व नकारे कौन।।61।।

समर्चितमिदं लिङ्गं दृष्ट्वा यस्त्वनुमोदते।
स वै शिवपुरं प्राप्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।
पुनर्भूमिं समासाद्य शिवभक्तो भवेद् ध्रुवम्॥62॥

पूजन विधि अवलोक जो, सुख में होता मग्न।
सौख्य भोग, शिवभक्ति में, आ, होता संलग्न।।62।।

निन्दायां प्रत्यवायः

निन्दन्ति ये च संमूढा दृष्ट्वा लिङ्गं समर्चितम्।
तेषां पूर्वार्जितं पुण्यं तत्क्षणादेव नश्यति॥63॥

पूजन लख जो मूढ़जन, होते चिन्तन भ्रष्ट।
पूर्वार्जित भी पुण्य सब, उनके होते नष्ट।।63।।

दृष्ट्वा हसन्ति ये मूढा देवि मल्लिङ्गधारिणः।
ते ब्रह्मकल्पपर्यन्तं पच्यन्ते नरकेषु वै॥64॥

इष्टलिंगधर देख जो करते हैं परिहास।
एक कल्प पर्यन्त वे करते नरक–निवास।।64।।

शैवशास्त्रस्य वक्तारमाक्षिपन्ति विमोहिताः।
छिद्यन्ते क्रकचैस्तेषां जिह्वाश्च यमकिङ्करैः॥65॥

शैव–शास्त्रियों की करें निन्दा जो खल्वाट।
यम–किंकर उनकी रखें जिह्वा पल–पल काट।।65।।

ततो भूमौ प्रजायन्ते मूकाश्च गलरोगिणः।
श्वानयोनिशतं प्राप्य जायन्ते कृमयस्ततः॥66॥

गूँगे लेते जन्म वे, कण्ठरुग्ण, खल, ढीठ।
योनि भोगकर श्वान की बनते हैं कृमि–कीट।।66।।

ममापरावताराणां लिङ्गाङ्गानां विशेषतः।
निन्दां कुर्वन्ति ये मोहात् तेषां तु निरयो गतिः॥67॥

निन्दित करते दुष्ट जो शिव या शिव–अवतार।
निश्चित पड़ता देखना, उन्हें नरक का द्वार ।।67।।

शक्तश्चेदसतां जिह्वां छिन्द्याद् यः स्वयमेव हि।
न तस्य दोषलेशोऽस्ति शिवलोकं स गच्छति॥68॥

सक्षम ऐसे दुष्ट की ले यदि जिह्वा काट।
दोष नहीं लगता उसे, वह बनता सम्राट।।68।।

अशक्तश्चेत्तदाऽन्यत्र गच्छेत्तत्र न संवसेत्।
तत्संसर्गान्महादोषं प्राप्नोति हि न संशयः॥69॥

अक्षम है तो त्याग दें वह स्थान सरोष।
अनजाने मढ़ अन्यथा, जाता उस पर दोष।।69।।

शिवनिन्दा भक्तनिन्दा निन्दा रुद्राक्षभस्मनोः।
यत्र प्रवर्तते देवि न तत्र दिवसं वसेत्॥70॥

भस्म, भक्त, रुद्राक्ष या शिव–निन्दा का ठौर।
त्वरित त्यागकर, भक्त, ले खोज ठिकाना और।।70।।

यद्गृहे भविसंसर्गस्तद्गृहं परिवर्जयेत्।
यत्रान्यदेवपूजा स्यान्न तिष्ठेत्तत्र भक्तिमान्॥71॥

भविगण वाले भवन को साधक दे झट त्याग।
रखना उससे चाहिए रंच नहीं अनुराग।।71।।

लिङ्गपूजकः पुरुषश्रेष्ठः

यस्त्वेवमाचरन् पूजां कुर्यान्मे लिङ्गरूपिणः।
स एव पुरुषश्रेष्ठः पूज्यः सर्वजनैरपि॥72॥

इस विधि का पूजक रहे सब पुरुषों में श्रेष्ठ ।
पाता है वे फल सभी जो हैं उसको प्रेष्ठ।।72।।

एवं लिङ्गस्वरूपं च समर्चनविधानतः।
तत्फलं च तव प्रोक्तमितः किं श्रोतुमिच्छसि॥73॥

देवि इष्टलिंग के कहे मैंने सुविधि कलाप।
और बताओ पूछना चाह रहीं क्या आप।।73।।

✡✡✡

सप्तमः पटलः

देव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वज्ञ परमेश्वर।
त्वत्प्रसादादभिव्यक्तः शिवपूजाविधिक्रमः॥1॥

कृपा–दृष्टि से आपकी, हे सर्वेश्वर, तात।
शिवपूजा का क्रम सभी मुझे हो गया ज्ञात।।1।।

शैवाः कति कथं तेषु वीरशैवस्तु मोक्षदः।
मोक्षोत्पादकमाचारं तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर॥2॥

अब मुझको बतलाइए, कितने शैव प्रकार।
वीरशैव मत मोक्ष प्राप्ति का क्यों प्रातक आचार।।2।।

शिव उवाच

साधु साधु महाभागे सम्यक् पृष्टमिदं त्वया।
विस्तरात् कथितुं श्रोतुं नालं वर्षायुतं शिवे॥3॥

साधुवाद के योग्य तुम हो हे शैलकुमारि।
प्रश्न उचित, पर, किस तरह समझाएं त्रिपुरारि।।3।।

सप्तविधाः शैवाः

तस्मात् संक्षिप्य तत्सर्वं वक्ष्यामि तव पार्वति।
शैवाः सप्तविधा ज्ञेयास्तेषां भेदान् श्रृणु क्रमात्॥4॥

फिर भी मैं संक्षेप में समझा रहा तथैव।
माने सात प्रकार के, गये सृष्टि में शैव।।4।।

अनादिशैवः प्रथम आदिशैवस्ततः परम्।
महाशैवस्ततो ज्ञेयस्त्वनुशैवस्ततः परम्॥5॥

आदि, अनादिक, अनु, महा ये चत्वारि प्रकार।
अपने–अपने ढंग के पूजा के आधार।।5।।

अवान्तरस्ततो ज्ञेयः प्रवरस्तदनन्तरम्।
अन्त्यशैवस्ततो ज्ञेयस्तेषां लक्षणमुच्यते॥6॥

फिर अवान्तर, प्रवर अपि, अन्तय शैव शुभ नाम।
सप्त कोटि के इस तरह हैं शुभता के धाम।।6।।

अनादिशैव आदिशैवश्च

अनादिशैवो मत्तोऽन्यो नास्ति लोकेषु कश्चन।
आदिशैवास्तु विज्ञेयाः कौशिकाद्या नगात्मजे।।7।।

मुझसे इतर अनादि में अन्य न कोई शैव।
आदिक में कौशिक प्रभृति, हैं शुभता के धाम।।7।।

कौशिकः कश्यपश्चैव भरद्वाजात्रिगौतमाः।
आदावेते महादेवि पञ्चवक्त्रेषु दीक्षिताः।।8।।

पहले गौतम आदि पँच दीक्षित हुए मुनीश।
भरद्वाज सँग अत्रि भी आये नत कर शीश।।8।।

तद्वंश्यानां पुनर्दीक्षा नास्ति सा चेत्तु तत्फलम्।
किन्तूपनयनादूर्ध्वं मण्डले पूज्य शङ्करम्।
पित्रादिभिश्चोपदेश्या मम मन्त्रादिकाः क्रियाः।।9।।

सकता कर पितु आदि भी निर्वाहित दायित्व।
नहीं न्यूनतम रंच भी, ऋषि से प्रौढ़ कृतित्व।।9।।

दत्त्वा तु भस्म ताम्बूलं मद्भक्तानां च भोजनम्।
दक्षिणां च ततो दद्याद् वित्तशाठ्यं न कारयेत्।।10।।

भोजन सँग ताम्बूल भी शिवभक्तों को देय।
दक्षिणादि में कृपणता, कहलाएगी हेय।।10।।

एते शिवद्विजाः प्रोक्ताः लोकपूज्या भवन्ति हि।
एभिरेव प्रकर्तव्यं यजनं स्वपरार्थकम्।।11।।

आदिशैव परिवार में द्विज स्वरूप हैं मान्य।
यजन- पूजनों का जहां रहता है प्राधान्य।।11।।

शैवदीक्षोक्तमार्गेण दीक्षिता ब्राह्मणाः शिवे।
महाशैवास्तु ते ज्ञेया महान्तो लोकपूजिताः।।12।।

महाशैव हैं लोक में परम पूज्य हर भांति।
दीक्षा विधि में दीक्षित, ग्रहते अग्रिम पांति।।12।।

अनुशैवोऽवान्तरशैवश्च

अनुशैवा इति प्रोक्ता नृपा वैश्याश्च दीक्षिताः।
अवान्तराख्यशैवास्तु शूद्राश्चेद् दीक्षिता यदि॥13॥

अनुशैवों में वैश्य सँग क्षत्रियगण भी मान्य।
योग्य शूद्र भी अवान्तर है दीक्षित अभिधान्य।।13।।

प्रवरशैवोऽन्त्यशैवश्च

कुलालपार्श्वकाद्यश्च प्रवरः शैव उच्यते।
अन्यासामन्त्यजातीनामन्त्यशैवं विधीयते॥14॥

अन्त्यशैव इनसे इतर, पार्श्वक और कुलाल।
इन सबकी दीक्षा मगर है आवश्यक ढाल।।14।।

आचारभेदाच्छैवभेदः

एवं प्रोक्ताः शैवभेदा जात्यनुक्रमशो मया।
आचारभेदाच्छैवस्य भेदः संकथ्यतेऽधुना॥15॥

मैंने बोले भेद ये ले जातिक आधार।
अब आचारिक भेद से बतला रहा प्रकार।।15।।

सामान्यशैवं प्रथमं मिश्रशैवं ततः परम्।
शुद्धशैवं ततो ज्ञेयं वीरशैवं ततः परम्।
एतेषां लक्षणं वक्ष्ये शृणु देवि यथाक्रमम्॥16॥

शुद्ध, मिश्र, सामान्य अपि, वीर शैव हैं नाम।
कहता हूं, लक्षण सुनो, इनके भी अभिराम।।16।।

यदा यदा शिवं पश्येत् तदा कुर्याच्छिवार्चनम्।
प्रदक्षिणनमस्कारौ दर्शनं वा समाचरेत्।
नास्ति पूजादिनियमो यथासम्भवमाचरेत्॥17॥

दर्शन कर पूजा करे, भेद न भाये कोय।
नियम न इसमें रंच भी, जितना संभव होय।।17।।

शिवचिह्नेषु भक्तेषु शिवकार्येषु पार्वति।
भक्तिं कुर्वीत सततं मनोवाक्कायकर्मभिः।
सामान्यशैवमाख्यातं मिश्रशैवमथो शृणु॥18॥

करें शैव सामान्य का, उचित मान–सम्मान।
मिश्र शैव के अब सुनो लक्षण देकर ध्यान।।18।।

मिश्रशैवः

शिवं विष्णुं च ब्रह्माणं कुमारं गणनायकम्।
आदित्यमम्बिकां चैव मिश्रीकृत्य समर्चनम्॥19॥

सुलभ विष्णु इत्यादि को है समान प्रणिपात।
इससे ये जग में हुए मिश्र शैव विख्यात।।19।।

सर्वत्र देवताबुद्धिर्माहात्म्यं शिव एव हि।
शिवधर्मान्यधर्माणां समाचरणमादरात्॥20॥

शिव महात्म्य को मानता है यह भली प्रकार।
पालित करता धर्म के सभी विहित आचार।।20।।

अन्यपूजामिश्रितत्वाद् मिश्रशैवमुदीरितम्।
अतः परं शुद्धशैवं वक्ष्यामि शृणु पार्वति॥21॥

शुद्ध शैव की बात अब सुनो मिश्र के बाद।
यह भी प्रिय, देगी तुम्हें तोष और आह्लाद।।21।।

शुद्धशैवः

शुद्धः शिव इति प्रोक्तस्तद्भवं शैवमुच्यते।
उभयोः सम्पुटीभावाच्छुद्धशैवमिति स्मृतम्॥22॥

शिव ने उपदेशित किया जिनको बिन अवरोध।
उनसे होता है स्वयं शुद्ध शैव का बोध।।22।।

एक एव महादेवः साम्बः सत्यादिलक्षणः।
तदन्यदेवास्तद्भक्तास्तदुद्भूतास्तदाश्रिताः ॥23॥

सत्य, ज्ञान, आनन्द का शिव को माने स्रोत।
तरने को ये खोजते और न कोई पोत।।23।।

शिवस्य पूजावेलायां ये चान्ये देवसत्तमाः।
तेषामावरणत्वेन पूजां कुर्यान्न चान्यथा॥24॥

शुद्ध शैव पूजा करें मुख्य इष्ट को मान।
अन्योतर हर देव को करके अन्तर्धान।।24।।

गुरुणा दत्तलिङ्गं तु करपीठेऽपि वा यजेत्।
गुरूपदिष्टनियमान् सावधानं समाचरेत्॥25॥

बाएं कर की पींठ पर धारण करके इष्ट।
पालनीय इनको नियम गुरू द्वारा उपदिष्ट।।25।।

प्रमादात् पतिते लिङ्गे नष्टे दग्धे हृतेऽपि वा।
विनिर्गते तथा पीठाद् येन केन च दूषिते॥26॥

खण्डित, चोरित जाय हो अगर अचानक इष्ट।
पालनीय इनको नियम गुरू द्वारा उपदिष्ट।।26।।

गुरुपादाम्बुजं स्मृत्वा जप्त्वाऽघोरं तदाज्ञया।
तल्लिङ्गमेव वाऽन्यद्वा धारयेत् पूजयेत् पुनः॥27॥

तो अपने गुरू पूज्य के उपदेशों अनुसार।
पढ़कर मन्त्र अघोर के, ले वह उसको धार।।27।।

प्रमादान्नियमे लुप्ते मूलपञ्चाक्षरीं जपेत्।
प्रायश्चित्तमिदं देव व्रताचारादिलोपने।
शुद्धशैवमिदं प्रोक्तं वीरशैवमथो शृणु॥28॥

प्रायश्चित रहता प्रिये, सब भूलों का तोड़।
वीरशैव की ओर लो अब अपनी मति मोड़।।28।।

वीरशैवः

वीतरागादिदोषत्वादात्मतत्त्वविचारणात् ।
विकल्पाकल्पशून्यत्वाद् वीरशैवमिति स्मृतम्॥29॥

राग–द्वेष दोषादि से रहे सदा जो दूर।
वीर शैव वह धारता भक्ति–शक्ति भरपूर।।29।।

सामान्यं प्रथमं प्रोक्तं विशेषं च द्वितीयकम्।
निराभारं तृतीयं स्यात् क्रमाल्लक्षणमुच्यते।।30।।

साधारण, सविशेष अपि है तृतीय निरभार।
वीरशैव के शैलजे, हैं ये तीन प्रकार।।30।।

सामान्यवीरशैवः

गुरूक्तेनैव मार्गेण भूतिरुद्राक्षधारणम्।
पञ्चाक्षरजपं देवि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।
गुरुणा दत्तलिङ्गं तु सावधानेन धारयेत्।।31।।

मन्त्र जपे पंचाक्षरी जो नित, बिना प्रमाद।
भस्म संग रूद्राक्ष भी, धारे बिना विषाद।।31।।

इष्टलिङ्गं प्राणलिङ्गं भावलिङ्गं च पार्वति।
एकीकृत्यार्चनं कुर्याद् वीरशैवो न भेदतः।।32।।

भाव, प्राणवत् इष्टलिंग पूजे रह समभाव।
भेदभाव का चित्त में रखे न रंच दुराव।।32।।

जङ्गमे निजलिङ्गैक्ये निर्भावे निर्मले परे।
भक्तिं कुर्यान्महादेवि स्वयं दारसुतादिभिः।
मम लिङ्गाङ्गसङ्गानां वञ्चनान्नरकं ध्रुवम्।।33।।

व्यवहृत स्वजनों को रखें वीरशैव सामान्य।
भोगी होता नरक का जो समझे अन्यान्य।।33।।

तस्माद् यत्नेन मद्भक्तैर्वीरमाहेश्वरात्मनाम्।
सेवा कार्या महादेवि मनोवाक्कायकर्मभिः।।34।।

आत्मीय सामान्य ये, रखें सुष्ठु व्यववहार।
माहेश्वर की भी करें सेवा विविध प्रकार।।34।।

गोत्रं च शिवगोत्रं च नामापि शिवनाम च।
सदाशिवौ च पितरौ बान्धवाः शिवकिङ्कराः।।35।।

गोत्र नाम सब शैव हैं, हम पितु–मातु समान।
व्यवहारें ये रीतियां, किंकर खुद को मान।।35।।

शिवार्थार्पितदेहाद्याः सुहृदः परिकीर्तिताः।
शिवकार्याभिमानश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।36।।

जनकल्याणी कार्य ही, है प्रयोजनी ध्येय।
त्रिभुवन वासी मित्रवत् इन्हें सदा संज्ञेय।।36।।

कराब्जपीठे यजनं धारणं सज्जिकान्तरे।
यद्वा कराब्जे वक्त्रे वा धारणं मोक्षकारणम्।।37।।

इष्टलिंग की धारणा, भावित भक्ति परोक्ष।
वीरशैव सामान्य को दिलवाती है मोक्ष।।37।।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि शाङ्करि।
लिङ्गस्य यजनं कुर्याल्लिङ्गाचारपरायणः।।38।।

एक बार, दो बार या तीन बार यह शैव।
इष्टलिंग पूजित करें, साक्ष्य सदैव, सदैव।।38।।

इत्येवमाचरन् धर्मान् विशेषं शैवमाचरेत्।
विशिष्टधर्मानुष्ठानाद् विशेष इति कथ्यते।।39।।

अपनाता जो उच्चतर शैवाचार-प्रदाय।
वीरशैव सामान्य से वह विशेष कहलाय।।39।।

एकं माहेश्वरं वापि द्वौ वा त्रीन् वा महेश्वरि।
भोजयित्वा तत्प्रसादं भुञ्जीत प्रतिवासरम्।।40।।

माहेश्वर अशनादि से, तोष-पोस साह्लाद।
वीरशैव सविशेष यह उनका ग्रहे प्रसाद।।40।।

द्रोणपुष्पं बिल्वपत्रं करवीरमथापि वा।
मल्लिकोत्पलपुन्नागजात्यादिकुसुमानि वा।।41।।

द्रोणपुष्प, करवीर या बिल्वपत्र, पुन्नाग।
कमल, मल्लिका आदि के लेकर पुण्य पराग।।41।।

एष्वेकं कुसुमं नित्यमर्पयेन्नियमान्वितः।
नैवेद्यधूपदीपांश्च तथा नित्यं समर्पयेत्।।42।।

एक पुष्प अर्पित करें इष्टलिंग पर नित्य।
धूप, दीप, नैवेद्य से पूजें गुर्वादित्य।।42।।

इत्यादिनियमान् यस्तु निर्वहेज्जीवितावधि।
स एवाहं महादेवि विशिष्टशिवपूजकः॥43॥

इसी नियम का जो करे जीवनभर निर्वाह।
वह बनता साक्षात् शिव, दाहे जग का दाह।।43।।

आत्मानं वा सुतान् वापि सदनं च धनादि वा।
भूषणं सर्ववस्तूनि वाहनानि पशूनपि।
यत् स्वकीयमभिप्रेतं तत्कुर्याज्जङ्गमार्पितम्॥44॥

तन–मन–धन सविशेष यह, शैव मोह–उन्मोच।
जंगम को करता रहे अर्पित निस्संकोच।।44।।

अनुभूतं तु तैः पश्चादादाय स्वयमादरात्।
कुर्यात् प्रसादबुद्ध्या यः स विशिष्ट इति स्मृतः॥45॥

माहेश्वर द्वारा सभी ये पदार्थ उपयुक्त।
मान प्रसादी वह करे अपने लिए प्रयुक्त।।45।।

भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनि यो भुङ्क्ते चरवर्जितः।
स भुङ्क्ते मलमांसादि श्वपाकागारसम्भवम्॥46॥

जो, भोजन, सत्कार बिन, करता ग्रहण पुमान।
वह उसको चाण्डाल की विष्ठा, मांस समान।।46।।

शिवकार्यविरुद्धाश्चेद् भर्तृभार्यात्मजादयः।
परित्याज्यास्ते विशेषवीरशैवपरायणैः॥47॥

विमुख अगर शिवकार्य से हैं पत्नी–पुत्रादि।
तो विशेष यह शैव ले, छीन समस्त उपाधि।।47।।

लिङ्गनिष्ठा

लिङ्गभक्तिर्लिङ्गपूजा लिङ्गसेवा तथा शिवे।
लिङ्गध्यानं लिङ्गमनो लिङ्गचर्यापरौ करौ॥48॥

सेवा, पूजा, भक्ति का, रखें भक्त नित ध्यान।
लिंग का अपने हाथ से सदा करें सम्मान।।48।।

लिङ्गश्रुतिपरे श्रोत्रे लिङ्गार्पितरसादयः।
लिङ्गनिर्माल्यसुरभिलाभो घ्राणस्य पार्वति॥49॥

कर्णयुगल गुण–श्रवण हित तत्पर रखें सदैव।
घ्राणेन्द्रिय निर्माल्य भी रखे ध्यान में शैव।।49।।

लिङ्गालङ्कारसन्दर्शनासक्ते लोचनेऽपि च।
लिङ्गप्रदक्षिणपरौ पादौ च गिरिसम्भवे॥50॥

पग प्रदक्षिणारत रहें, गुण–गायनरत बैन।
सज्जा, शोभा लिंग की, देखें दोनों नैन।।50।।

लिङ्गस्य पुरतो नित्यं तदर्थं चाङ्गचेष्टनम्।
लिङ्गार्थं दत्तसर्वस्वं लिङ्गनिष्ठेति गीयते॥51॥

अंगचेष्टाएं सभी जो हों शिष्ट, विशिष्ट।
इष्टलिंग के हेतु सह, निष्ठा करें प्रतिष्ठ।।51।।

लिङ्गं पतिः सती चाहं भावोऽयं वीरशैविनाम्।
तस्माल्लिङ्गात्यये देवि सद्यः प्राणान् परित्यजेत्॥52॥

इष्टलिंग को मान पति, सती स्वयं को मान।
करें यथोचित आचरण, यह सविशेष सुजान।।52।।

दीक्षायां गुरुणा लिङ्गं धारितं गिरिजे यदा।
तदाप्रभृति लिङ्गाङ्गसम्बन्धी स्यान्निरन्तरम्॥53॥

गुरु ने किया प्रतिष्ठ जब यत्नों से भरपूर।
इष्टलिंग यह भक्त तब रखें कदापि न दूर।।53।।

इष्टलिङ्गे परे लुप्ते लिङ्गमन्यन्न धारयेत्।
पुनस्तदेव लब्धं चेद् धारयेद् देव्यशङ्कितः॥54॥

गुरुप्रीत यह लिंग यदि कभी लुप्त हो जाय।
अन्येतर धारे नहीं, सोचे नान्य उपाय।।54।।

जले वा पतितं लिङ्गं पुनर्दृष्टं तदेव हि।
धारयेदवधानेन वीरशैवो न दुष्यति॥55॥

नदिया में गिर जाय तो करें न रंचक रोष।
मिलने पर धारे पुनः इसमें लेश न दोष।।55।।

यवमात्रं यदि च्छिन्ने तदर्धार्धमथापि वा।
लिङ्गे पीठादिके वापि प्रायश्चित्तं न विद्यते॥56॥

लिंग, पीठिका की अगर साधारण क्षति होय।
वीरशैव सविशेष यह करे न चिन्ता कोय।।56।।

दैवाद् विनिर्गतं शक्तिपीठाल्लिङ्गमखण्डितम्।
पुनर्बद्ध्वा धारयितुं न केनाप्यलमद्रिजे॥57॥

शक्तिपीठ से लिंग कला चली जाय अन्यत्र।
पूर्ति हेतु संस्कार फिर वांछित है सर्वत्र।।57।।

इष्टलिङ्गस्य पुनः संस्कारः

नादबिन्दुकलारूपं कर्मसादाख्यमुच्यते।
बिन्दोर्विनिर्गते नादे कला ह्यन्यत्र गच्छति।
तत्पुनः पूरणं कर्तुं पुनः संस्कारमर्हति॥58॥

नाद, बिन्दु–युत् यदि कला चली जाय अन्यत्र।
पूर्ति हेतु संस्कार फिर वांछित है सर्वत्र।।58।।

पुनर्दीक्षादिसंस्कारः शुद्धशैवे विधीयते।
वीरशैवे पुनर्दीक्षा नेति भेदो वरानने॥59॥

पुनर्दीक्षा का शुभे है शुद्धि में विधान।
वीरशैव में यह नहीं समुचित है प्रणिधान।।59।।

लिङ्गलोपादिषु तनुत्यागो विधेयः

लिङ्गलोपादिदोषेषु व्रतचर्यादिलोपने।
प्राणान् धत्ते प्राणलिङ्गी सोऽन्धे तमसि मज्जति।
तस्मात् तत्प्राणलिङ्गं तु सावधानेन धारयेत्॥60॥

रखें सावधानी सदा प्राणलिंगधर शैव।
नरक भोगने के सिवा, अन्येतर गति नैव।।60।।

लिङ्गार्थमेव यः प्राणांस्त्यजेदैक्यं दृढं मयि।
स प्राप्नोति न सन्देहः सत्यं सत्यं वरानने॥61॥

इष्टलिंग से हो विलग, जीवन तजता जोय।
वह दृढ़ता से प्रियतमे, मुझसे समरस होय।।61।।

लिङ्गार्थं वापि गुर्वर्थमाचारार्थं तथैव च।
चरार्थं वा प्रसादार्थं तनुत्यागो विधीयते।
एवं निष्ठा तु यस्यास्ति गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥62॥

लिंग, नियम, गुरू निमित, जो रखें त्याग का भाव।
गार्हस्थ्य में भी उसे रहे न रंच तनाव।।62।।

इति प्रोक्तं मया देवि विशेषं वीरशैवकम्।
निराभारमतो वक्ष्ये समाहितमनाः शृणु॥63॥

वीरशैव सविशेष का मैंने किया बखान।
निराभार का अब सुनो, प्रेयसि देकर ध्यान।।63।।

निराभारवीरशैवः

जन्तोः पुण्यं पापमिति कर्म द्विविधमुच्यते।
निवृत्तकर्मभारत्वान्निराभार इति स्मृतः॥64॥

पाप पुण्य के भार से जो रहता है मुक्त।
निराभार समुपाधि प्रिय, होती उसे प्रयुक्त।।64।।

जटी मुण्डी शिखी वापि काषायवसनान्वितः।
निस्पृहो निजलिङ्गैक्यो भिक्षाशी भयवर्जितः॥
मौनी भूतदयायुक्तो निराभार इति स्मृतः॥65॥

जटी, शिखी या मुण्डितः, गैरिक हो परिधान।
भिक्षा का भोजन करें, करें दया का दान।।65।।

कन्थाकमण्डलुधरो भूतिरुद्राक्षसंयुतः।
दण्डकौपीनधारी च निराभार इति स्मृतः॥66॥

भस्म और रूद्राक्ष से तन को रखें सुसज्ज।
दण्ड–कमण्डलु धारकर रहे भक्ति में मज्ज।।66।।

माहात्म्यं जटिनां यत् स्यान्मुण्डिनां च तदेव हि।
वन्यैः पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैर्लिङ्गं प्रपूजयेत्॥67॥

गन्ध, पुष्प, फल से करें पूजित लिंगी इष्ट।
जटी रहे या सिरमुँडा, यह सब नहीं अभीष्ट।।67।।

कामक्रोधादिरहितः शिवज्ञानी जितेन्द्रियः।
जङ्गमस्तु चरेद् भिक्षां यावत् स्वोदरपूरणम्॥68॥

मात्र उदर की पूर्ति की करें अशन की मांग।
अन्य ऐन्द्रिय सुख सभी दें खूँटी पर टांग।।68।।

चरेन्माधुकरीं भिक्षां निराभारो दयापरः।
एकान्नं तु न चाश्नीयाद् देवि तद्दोषकृद् यतः॥69॥

एक जगह का अन्त है दोषारोपण योग्य।
जो भिक्षार्थी शैव को नहीं रंच उपभोग्य।।69।।

यथा मधुकरः पुष्पान्मधु गृह्णाति पार्वति।
तथा गृहस्थाद् भिक्षेत उपवाससमो विधिः॥70॥

द्वार–द्वार यति डोलकर पाये भिक्षा दान।
इस प्रकार की मधुकरी है उपवास समान।।70।।

भक्तैर्गृहस्थैः सम्पूज्या एते माहेश्वरा जनाः।
एतान् विना कृता पूजा नितरां निष्फला भवेत्॥71॥

इन्हीं जंगमों की करें, पूजा भक्त गृहस्थ।
बिन इनका पूजन किये उद्यम विफल समस्त।।71।।

न वस्तुसंग्रहं कुर्याद् यत्र कुत्रापि जङ्गमः।
दत्तं दद्याच्च भक्तेभ्यो दरिद्रेभ्यो दयान्वितः॥72॥

निराभार जंगम रहें संग्रह से अति दूर।
दान वस्तुओं का करें दीनों में भरपूर।।72।।

सुवर्णरत्नधान्यादिवस्तुवृद्ध्युपजीवनात् ।
अत्याश्रमी यदि चरेत् सोऽयं पातकिनां वरः॥73॥

भौतिक सम्पति का करें, संचय शैव न लेश।
इसमें पातक वृत्ति का होता है उन्मेष।।73।।

जटाधारी शिखी मुण्डी पञ्चमुद्रासमन्वितः।
स्त्रीसङ्गं कुरुते यस्तु स मद्रोही न संशयः॥74॥

निराभार यह शैव यदि करता स्त्री संग।
शिवद्रोही कलहा, करे पूजनचर्या भंग।।74।।

अतिवर्णाश्रमी मुण्डी प्राणलिङ्गाङ्गयोगभाक्।
न धारयेच्छिरोवस्त्रमुष्णीषं वा न धारयेत्॥75॥

साधक अति वर्णाश्रमी, त्यागे राग-विचाग।
कभी न धारे शीश पर, शिरोवस्त्र या पाग।।75

छिन्नभिन्नादिदुष्टं च यद्वल्लिङ्गं न पूज्यते।
लिङ्गाचारव्रतभ्रष्टो जङ्गमस्तु न पूज्यते॥76॥

क्षतिग्रस्त शिवलिंग ज्यों रहता नहीं प्रणम्य।
भ्रष्ट जंगमी भी तथा रहता है अक्षम्य।।76।।

जङ्गमो जङ्गमं दृष्ट्वा न प्रणामं करोति यः।
स एव जङ्गमद्रोही मद्रोही च न संशयः॥77॥

देख अपर जंगम न यदि करें उचित सत्कार।
निराभार वह भक्त हैं मुझको भी बेकार।।77।।

जङ्गमं द्वेष्टि यो मोहात् स तु मां द्वेष्टि शाङ्करि।
तस्मादन्योन्यमपि च पूज्याः स्युर्जङ्गमस्थले॥78॥

निराभार पालें नहीं आपस में भी द्वेष।
इससे मुझमें रोष का होता है उन्मेष।।78।।

शिवभक्तिः शिवज्ञानं शिवमुद्रा शिवव्रतम्।
शिवलिङ्गार्चनश्रद्धा वृत्त्यन्तरनिरोधनम्।
एते धर्मा यत्र सन्ति स भाराभारवर्जितः॥79॥

भक्ति, ज्ञान, व्रत आदि के बांटे जो कि प्रदाय।
निराभार वह वास्तविक वीर शैव कहलाय।।79।।

षट्स्थलज्ञानसम्पन्नः षडङ्गाङ्गसमाधिमान्।
आत्मवत् यः परद्रष्टा स एवाहं न संशयः॥80॥

चित्त षडंग युक्त हो, अपि समदर्शी भाव।
शिवस्वरूप मानें उसे, जग समझे न दुराव।।80।।

वीरशैवः परो यस्तु यत्र तिष्ठति पार्वति।
तत्तीर्थं तत्तपः शान्तिस्तत्र तिष्ठामि सर्वदा॥81॥

वहीं तीर्थ, तप, शान्ति, सुख जहां शैव निरभार।
मैं भी समुपस्थित वहीं, सत्य करो स्वीकार।।81।।

तीर्थयात्रादिकं तेषां नास्ति चान्यत्र पार्वति।
कैलासादिपदापेक्षां त्यजेल्लिङ्गाङ्गयोगभाक्॥82॥

तीर्थाटन इनको कभी रहता नहीं अपेक्ष।
मम स्थल से भी सदा, वीरशैव निरपेक्ष।।82।।

यत्रान्यदेवतापूजा तत्स्थानं परिवर्जयेत्।
शिवभक्तिविहीनं च जनं नैव समाश्रयेत्॥83॥

मेरी अनघा भक्ति प्रिय, रही सदा अविभाज्य।
इतर देव अनुरक्त जो वो समस्त है त्याज्य।।83।।

आदातृदातृदेयानां शिवचिह्नं सुशोभनम्।
शिवचिह्नाङ्कितं ग्राह्यमन्यच्चण्डालविट्समम्॥84॥

शिव के चिन्हों से इतर सकल पदार्थ अनूप।
वे सब हैं चाण्डाल की विष्ठा के समरूप।।84।।

सर्वं शिवमयं पश्येदन्यभावो न विद्यते।
लिङ्गाङ्गसम्बन्धपदार्थज्ञानं मोक्षसाधनम्॥85॥

मुक्तिदायि साधन प्रबल, लिंग अंग सम्बन्ध।
इनमे इतर न अन्य कुछ, पूजन के उपलब्ध।।85।।

तदेकमेव मोक्षः स्यान्मम लिङ्गाङ्गयोगिनः।
तस्मात् सर्वैः सदा कार्यं लिङ्गाराधनमादरात्॥86॥

जुड़ी हुई शिव से सुदृढ़ सिद्धि, साधना, साध्य।
आदरपूर्वक इसलिए शिवलिंग ही आराध्य।।86।।

श्रीलिङ्गधारणं हित्वा यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
सूर्याचन्द्रमसौ जन्तोरायुष्यक्षयकारकौ॥87॥

शिवः भक्ति से इतर जो भक्त बजाता तूर्य।
क्षरते उसकी आयु को बरबस चन्दा, सूर्य।।87।।

तस्माल्लिङ्गार्चनं कुर्यात् सर्वधर्मोत्तमोत्तमम्।
यावत्करणसामर्थ्यं जरा यावन्न संस्पृशेत्।
स्थिरत्वं मनसो यावत् तावत् कुर्याच्छिवार्चनम्॥88॥

जब तक चलती श्वास यह, है इस तन में शक्ति।
शिवलिंग की पूजा करें धार ह्रदय में भक्ति।।88।।

रहस्यं गोप्यम्

इदं रहस्यं परमं सारात्सारतरं महत्।
न वक्तव्यमभक्ताय कृतघ्नाय च मायिने॥89॥

छली, कृतघ्नी व्यक्ति या शिव के द्रोही मूढ़।
नहीं बताना चाहिए यह रहस्य अति गूढ़।।89।।

वक्तव्यं हि प्रयत्नेन श्रद्धाभक्तियुताय च।
सदाचारे व्रते चापि निरताय महेश्वरि॥90॥

शिव, गुरू के प्रति भक्ति का भावक जो नर-रत्न।
उसे बताना चाहिए यह रहस्य स-प्रयत्न।।90।।

इदं प्रोक्तं हि संक्षेपाद् वीरशैवं महोत्तमम्।
मोक्षैकफलदं देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥91॥

वीरशैव की शास्त्रगत मैंने कह दी गाथ।
किस शंका से अब कहो, बोझिल है तव माथ।।91।।

✡✡✡

अष्टमः पटलः

देव्युवाच

भगवन् सर्वलोकेश करुणाकर शङ्कर।
शैवभेदस्वरूपं च वीरशैवं विशेषतः॥1॥

हे त्रिलोकस्वामीप्रवर! करूणा के अवतार।
वीरशैव की है कहीं, गाथा भली प्रकार।।1।।

तदाचारविशेषं च श्रुतं त्वत्कृपया विभो।
तत्र लिङ्गाङ्गसम्बन्धज्ञानं मोक्षैकसाधनम्।
इत्युक्तं भवता देव तज्ज्ञानमुपदिश्यताम्॥2॥

समाधान दे आपने, हरे चित्त के क्लेश।
लिंग, अंग का प्रभु मुझे अब दीजे उपदेश।।2।।

शिव उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया देवि रहस्यमिदमुत्तमम्।
षट्स्थलात्मकमेतत्तु श्रूयतां सावधानतः॥3॥

षटसथलात्मक ज्ञान का है रहस्य अति गूढ़।
समझ जिसे पाते न प्रिय, सहज रूप में मूढ़।।3।।

षड्विधलिङ्गानि

आदावाचारलिङ्गं स्यात् ततश्च गुरुलिङ्गकम्।
शिवलिङ्गं ततो ज्ञेयं चरलिङ्गमतः परम्॥4॥

शिव, गुरू, घर, आचारलिंग, चार, लिंग के भेद।
जिनकी व्याख्या कर रहे आदिकाल से वेद।।4।।

ततः प्रसादलिङ्गं स्यान्महालिङ्गमतः परम्।
एवं षड्विधलिङ्गानां स्वरूपं शृणु शाङ्करि॥5॥

पंचम अंग प्रसादलिंग, महालिंग है षष्ठ।
जिनमें महिमा से रंगे, ग्रन्थों के हैं पृष्ठ।।5।।

त्रिविधमाचारलिङ्गम्

स्थलसाचारलिङ्गस्य त्रिविधं श्रूयतां क्रमात्।
सदाचारस्तु नियतो गणाचारस्तथापरः॥6॥

सदा, नियत, गण नाम से, है आचार विभक्त।
विहित रीतिगत सत्व से, जो रहता अनुरक्त।।6।।

सज्जनः शिवभक्तश्च येन मार्गेण सर्वदा।
तोष्यते च महादेवि सदाचारः स वै स्मृतः॥7॥

जो सुरीति शिवभक्त के, प्रेयसि तोष दिलाय।
वहीं आचरण, शैलजे! सदाचार कहलाय।।7।।

यस्तु स्वकृतमाचारं न त्यजेच्च तदत्ययात्।
त्यजेदसून् महादेवि नियताचार ईरितः॥8॥

अंगीकृत आचार का जो न करे परिहार।
कहलाती है रीति वह विशुभे! नियताचार।।8।।

गुरुलिङ्गादिविषये न श्राव्यं दूषणं यदि।
श्रुतं तान् शिक्षयामीति गणाचारः स हि स्मृतः॥9॥

जो न सहे, सहने न दे; गुरू-निन्दा की धूप।
वही सुभग संकल्प है गणाचार का रूप।।9।।

त्रिविधं गुरुलिङ्गम्

दीक्षा शिक्षाऽनुभावश्च गुरुलिङ्गं त्रिधा भवेत्।
कुण्डमण्डलहोमाद्या त्वध्वशुद्धिः कलात्मिका।
मन्त्रोपदेशसहिता या सा दीक्षेति कथ्यते॥10॥

शिक्षा, दीक्षा-भेद संग गुरु तृतीय अनुभाव।
जिसमें मण्डल, कुण्ड की निर्मिति हो समभाव।।10।।

दीयते लिङ्गसम्बन्धः क्षीयते कर्मसञ्चयः।
दीयते क्षीयते साक्षाद् यया दीक्षेति कथ्यते॥11॥

क्षयकर्ता अपकर्म का जो दे समुचित ज्ञान।
दीक्षागुरू बनकर वही पाये शुचि सम्मान।।11।।

गुरुलिङ्गचराख्यानां लिङ्गानामेकरूपकम्।
यज्ज्ञानं बोधितं सद्भिः सा शिक्षेति निगद्यते॥12॥

हैं शिक्षा के नाम से सदुपदेश संज्ञेय।
उस शिक्षा–गुरू की नहीं गरिमा है परिमेय।।12।।

संस्कारैः प्राक्तनैर्देवि स्वकीयसुकृतार्जितैः।
ज्ञानाधिक्यं भवेद् यत्तु स्वानुभावः स उच्यते॥13॥

संस्कारों के बल करें, अर्जित ज्ञानाधिक्य।
वह ही प्रिय, अनुभाव–गुरू भक्तों में माणिक्य।।13।।

त्रिविधं शिवलिङ्गम्

शिवलिङ्गस्वरूपं ते वक्ष्यामि शृणु पार्वति।
इष्टलिङ्गं प्राणलिङ्गं भावलिङ्गमिति त्रिधा॥14॥

भाव, प्राण, अपि इष्टलिंग, शिवलिंग के त्रय भेद।
नित्य करें जो भक्त के कष्टों का उच्छेद।।14।।

दीक्षाविधानाद् गुरुणा यल्लिङ्गं दत्तमादरात्।
मन्त्रोपदेशसहितम् इष्टलिङ्गमुदाहृतम्॥15॥

दीक्षा और विधान संग दिया इष्ट जो जाय।
गुरू से अभियन्त्रित वही, इष्टलिंग कहलाय।।15।।

त्यक्तदेहेन्द्रियगुणः शिवार्पितनिजान्तरः।
शिव एव मनो लीनं प्राणलिङ्गं तदुच्यते॥16॥

जिसके अन्तस् में बसी, शिव की भक्ति अनूप।
वही स्फूर्त चिद्रूप है, प्राण लिंग का रूप।।16।।

जाग्रदादिष्ववस्थासु ज्योतिर्लिङ्गैक्यमानसम्।
अज्ञानविनिवृत्तं च भावलिङ्गं तदुच्यते॥17॥

आवृत ज्योतिर्लिंग से, सिरजे पुण्य प्रभात।
भाव लिंग के रूप में वह है जग–विख्यात।।17।।

त्रिविधं चरलिङ्गम्

चरलिङ्गस्थलस्यास्य स्वरूपं कथयामि ते।
स्वयं चरं परं चेति त्रैविध्यं समुपागतम्॥18॥

चर जंगम के भी प्रिये तीन-तीन हैं रूप।
स्वयं, चरं के साथ, पर, जंगम परम अनूप।।18।।

लिङ्गलाञ्छनसंयुक्तं बाह्यकर्मविवर्जितम्।
केवलानन्दरूपं यत्तत् स्वयलिङ्गमीरितम्॥19॥

जो पूजन में रत रहे इष्ट वाह्य तन धार।
वह खुद-जंगम रूप धर, आनँद सृते अपार।।19।।

स्वच्छन्दचारी स्वाभिन्नलिङ्गरूपो निराकुलः।
भेदभ्रान्तिविहीनो यश्चरलिङ्गं स उच्यते॥20॥

पलती जिसके चित्त में कभी न कोई भ्रान्ति।
चरजंगम की राजती, उसके मुख पर कान्ति।।20।।

निर्द्वन्द्वो हि सदा स्थाणुर्गमागमविवर्जितः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपोऽयं परलिङ्गमुदाहृतम्॥21॥

दुखी नहीं करते जिसे जन्म-मरण द्वन्द्वादि।
परजंगम की प्रेयसी ! मिलती उसे उपाधि।।21।।

त्रिविधं प्रसादलिङ्गम्

प्रसादलिङ्गत्रैविध्यमपि श्रृणु वरानने।
शुद्धं सिद्धं प्रसिद्धं च भेदश्चैषामथोच्यते॥22॥

शुद्धित, सिद्ध, प्रसिद्ध इति, लिंगप्रसाद त्रयरूप।
तीनों पृथक प्रकार के भक्तिभावना-कूप।।22।।

पूर्वसर्वगुणत्यागः कामक्रोधादिवर्जनम्।
गुरुभक्तप्रसादो यः स शुद्धः परिकीर्तितः॥23॥

गुरु-अनुकम्पा-प्राप्ति का जिसे मिले आह्लाद।
वह ही कहलाता प्रिये! सचमुच शुद्ध प्रसाद।।23।।

ज्ञात्वा लिङ्गत्रयं सम्यक् तदैक्यं च वरानने।
लिङ्गार्पितप्रसादोऽयं सिद्ध इत्यभिधीयते॥24॥

सिद्ध प्रसाद वरानने ! वही विश्व में मान्य।
एकमेव गुरूतत्व का है न जहां प्राधान्य।।24।।

शिवोऽहम्भावनायुक्तो निश्चलीकृतमानसः।
चरार्पितप्रसादोऽयं प्रसिद्धः परिकीर्तितः॥25॥

साक्षात् शिव रूप जो, रहता बिन अवसाद।
वह हीं कहलाता शुभे! रूप प्रसिद्धप्रसाद।।25।।

त्रिविधं महालिङ्गम्

महालिङ्गस्थलं चापि त्रिधा भिन्नं शृणु क्रमात्।
पिण्डजं प्रथमं प्रोक्तमण्डजं च ततः परम्।
बिन्द्वाकाशं ततो ज्ञेयमेषां लक्षणमुच्यते॥26॥

स्थल के भीं जान लो, प्रिये ! भेद हैं तीन।
पिण्डज, अण्डज से अपर, बिन्दुज शुभ, अ–मलीन।।26।।

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सदाशिवः।
इति निश्चितसद्भावः पिण्डजं लिङ्गमुच्यते॥27॥

जिसको अपना तन लगे महादेव का गेह।
महालिंग पिण्डज उसे मानो प्रिये ! सदेह।।27।।

पीठिका पृथिवी लिङ्गमाकाशः सृष्टिकारणम्।
निस्सन्देहमिदं ज्ञानमण्डजं लिङ्गमीरितम्॥28॥

भूमि और नीलाम्बर जिसके अक्षय भाण्ड।
महालिंग अण्डज समझ, लो यह सब ब्रह्माण्ड।।28।।

ध्यात्वात्मानमथाकाशे ध्यात्वाकाशं तथात्मनि।
आत्माकाशमयं लिङ्गं बिन्द्वाकाशमुदाहृतम्॥29॥

सकल सृष्टि में व्याप्त है जिसका रूचिर प्रकाश।
महालिंग वह ही प्रिये ! समझो बिन्द्वाकाश।।29।।

देव्युवाच

एषु लिङ्गेषु देवेश कथं पूजादिकं भवेत्।
समाचारस्तु को वात्र प्रसादः कीदृशो भवेत्।
एतत्सर्वं समासेन कृपया वद मे प्रभो॥30॥

कैसे ये सब पूज्य हैं, क्या इनके उपचार ।
यह भीं प्रभु! बतलाइए, मुझको सोच–विचार ।।30।।

शिव उवाच

अङ्गस्थलं समासेन वक्ष्ये षड्विधमादितः।
यस्मिन् ज्ञाते महादेवि ज्ञायते चाधिकं ततः॥31॥

इनसे पहले लो प्रिये! तुम अंगस्थल जान।
जिससे आरोपित न हो भ्रम अथवा अज्ञान ।।31।।

सलक्षणानि षट्स्थलानि

भक्तो माहेश्वरश्चैव प्रसादी प्राणलिङ्गकः।
शरणः शिवलिङ्गैक्यः षट्स्थलानि हि पार्वति॥32॥

छह अंगस्थल प्राणप्रिय! वहते साध अनूप ।
भक्त, प्राण, लिंगीं, शरण, प्रसादि आदि स्वरूप ।।32।

अथैषां लक्षणं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहिता।
त्यक्ताभिमानो देहादौ भक्त इत्युच्यते बुधैः॥33॥

इन्द्रिय सुख, अभिमान, तन, त्याग चुका है जोय।
आत्मतत्व से युक्त जो भक्त कहाता सोय ।।33।।

तच्चित्तममलं यस्य स वै माहेश्वरः स्मृतः।
चित्तं स्थिरं भवेद् यस्य स प्रसादी भवत्यसौ॥34॥

माहेश्वर, रागादि से सदैव रहता दूर।
निर्मलमना, प्रसादि की गुणता से भरपूर ।।34।।

त्यक्त्वा जीवभ्रमं भूयो लिङ्गात्मा प्राणलिङ्गकः।
शिवनित्यत्वनिश्चिन्तः सानन्दः शरणो भवेत्।
शिवजीवोभयभ्रान्तिरहितश्चैक्य उच्यते॥35॥

तन्मय लिंगस्वरूप जन प्राणलिंगि कहलाय।
सत्, चित्, कहलाये शरण, ऐक्यरूप विलगाय।।35।।

त्रिविधो भक्तः

गुरुभक्तो लिङ्गभक्तश्चरभक्तस्तथैव च।
एवं भेदसमायुक्तो भक्तस्तु त्रिविधो भवेत्॥36॥

त्रय भक्तों के भेदवश, स्थल भी त्रय रूप।
जिसके शुचितर ज्ञान के तृषित रोम के कूप।।36।।

षड्विध आचारलिङ्गभक्तः

मोही भक्तः पूजकश्च तथा वीरः प्रसादवान्।
प्राणी चाचारलिङ्गादिः स वै भक्तोऽपि षड्विधः॥37॥

लिंगीभेदोवश हुए छह प्रकार के भक्त।
मोही, पूजक, वीर अपि, प्रसादादि अव्यक्त।।37।।

मोहं त्यजेत् कलत्रादौ मोही ह्याचार एव हि।
शिवाचारविरुद्धांश्च त्यजेदपि सुतादिकान्।
स एवाचार मोही स्यादन्याचारविवर्जितः॥38॥

शिवाचार–विपरीत जन, छोड़े जो सायास।
वह मोही बन भक्ति का, ओढे कीर्ति–उजास।।38।।

पूर्वाचारं परित्यज्य शिवाचारं समाश्रितः।
आचारलिङ्गभक्तः स्याद् विरुद्धाचारवर्जितः॥39॥

भक्त कहाता वह प्रिये! जो कर ज्ञान ग्रहीत।
शिवाचार से जुड़ स्वयं, रहता अजय, अभीत।।39।।

अन्यपूजां परित्यज्य लिङ्गपूजैकतत्परः।
शिवाचारपरो यस्तु स स्यादाचारपूजकः॥40॥

देवेतर, शिवलिंग ही, पूजन जिसका ध्येय।
शिवाचार –अभ्यासि जो, वह पूजक संज्ञेय ।।40।।

अपि प्राणात्यये देवि स्वाचारं न परित्यजेत्।
आचारलिङ्गवीरः स्यादाचारैकपरायणः॥41॥

प्राणाधिक प्रिय है जिसे, परम्परा की पीर।
वह आचारीलिंग का कहलाता है वीर।।41।।

शुचित्वमशुचित्वं चेत्यादिसन्देहवर्जितः।
ग्राह्याग्राह्यादिरहितः स्यादाचारप्रसादकः॥42॥

ग्रहणीयता, पुनीति से जिसको राग-न द्वेष।
उसमें लिंग प्रसादि का, करता भाव प्रवेश।।42।।

परैः कृतामीशनिन्दां शृणुयान्न च कुत्रचित्।
इति योऽस्ति स आचारलिङ्गप्राणीति कथ्यते॥43॥

ईश्वर-निन्दा-ओर जो देता कभी न कान।
प्राणी कहलाता वही, साधक, सभ्य सुजान।।43।।

एवमाचारलिङ्गैकतत्परो मां समाश्रयेत्।
प्रतिपद्य स नित्यत्वं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥44॥

दत्तचित्त पूजन करें, पाले इतर न व्याधि।
गाणपत्य की देवि ! वह पाता दिव्य उपाधि।।44।।

षड्विधो गुरुलिङ्गभक्तः

एवं च गुरुलिङ्गेऽपि षड्भेदाः सम्भवन्ति हि।
त्यक्तपित्रादिमोहः सन् गुरुलिङ्गैकमोहवान्।
एवं यो वर्तते देवि गुरुमोही स उच्यते॥45॥

मोह छोड़ परिजनों का, रखे इष्ट-प्रति, प्रीति।
मोहीसंज्ञा प्राप्त वह, पाये शिव की मीति।।45।।

लौकिकान् बान्धवान् त्यक्त्वा गुरुलिङ्गैकबान्धवः।
हर्षपूर्णो महादेवि गुरुभक्त इति स्मृतः॥46॥

त्याग निजी बान्धव सभी, रखे विशद-सम्बन्ध।
भक्त नाम से प्रसरती, उसके यश की गन्ध।।46।।

पूजामन्यां परित्यज्य गुरु लिङ्गैकपूजकः।
इति निष्ठापरो यस्तु गुरुपूजक उच्यते॥47॥

अन्य देव–पूजन तजे, गुरू लिंग पूजे मात्र।
पूजक संज्ञा प्राप्त वह है श्रद्धा का पात्र।।47।।

गुरूपदिष्टमेवाथ समाचरणमाचरन्।
यश्च त्यक्तेतराचारों गुरुवीरः स उच्यते॥48॥

गुरू द्वारा उपदिष्ट, जो पाले हर आचार।
आचारी गुरू लिंग में उसका वीर प्रकार।।48।।

यो वै न लङ्घयेद् देवि कदाचिद् गुरुशासनम्।
स वै गुरुप्रसादी स्यान्निवृत्तेतरशासनः॥49॥

करे न उल्लंघन कभी, माने गुरू–उपदेश।
उस प्रसादि को सराहें गौरी ! पुत्र गणेश।।49।।

सेवामन्यां परित्यज्य गुरुलिङ्गैकसेवकः।
वर्तते यः सदा देवि गुरुप्राणी स हि स्मृतः॥50॥

त्याग सभी गणदेव जो, साजे गुरू का साज।
प्राणी कह गुनता उसे सारा भक्त समाज।।50।।

एवं भेदैश्च मां देवि गुरुमूर्तिधरं शिवम्।
भजतेऽनन्यचित्तो यः स मुक्तः स्यान्न संशयः॥51॥

छह विधि जो गुरू–मूर्ति के धारण करता रूप।
जीवन से वह प्राप्त कर लेता मोक्ष अनूप।।51।।

षड्विधः शिवलिङ्गभक्तः

शिवलिङ्गस्थलेऽप्येवं षड्विधं व्रतमाचरेत्।
शिवलिङ्गैकमोही स्यादन्यमोहविवर्जितः।
शिवलिकभक्तः स्यादन्यभक्तिविवर्जितः॥52॥

मोही बनता त्यागकर अन्य देव इत्यादि।
पूजक शिवलिंगैक का, पाता भक्त उपाधि।।52।।

अनन्यदेवपूजः स्याच्छिवलिङ्गैकपूजकः।
शिवलिङ्गैकवीरः स्यात् पुण्यक्षेत्रादिनिस्पृहः॥53॥

पूजक कहलाता वहीं पूज, एक हीं देव।
यात्रा का हर मोह तज, वीर बने स्वयमेव।।53।।

शिवलिङ्गप्रसादी स्यात् सुखदुःखविवर्जितः।
यः सदा शिवलिङ्गैकप्राणी स्त्रीभोगवर्जितः॥54॥

नारि–प्रसंगों से सदा, भक्त रहे जो दूर।
उसको प्राणि उपाधि का मान मिले भरपूर।।54।।

एवं भेदेन मां देवि पूजयेल्लिङ्गरूपिणम्।
गाणपत्यं भवेत् तस्य दुर्लभं प्राकृतात्मनाम्॥55॥

यूं छह भेद प्रकार से, पूजे शिव बन आप्त।
उसको होता है प्रिये! गाणपत्य पद प्राप्त।।55।।

षड्विधश्चरलिङ्गभक्तः

चरलिङ्गस्थलेऽप्येवं भक्तस्याचरणं शृणु।
चरलिङ्गमेव सर्वस्वमिति संभावयन् हृदि।
चरलिङ्गैकमोही स्यादन्यमोहविवर्जितः॥56॥

चरजंगम में भी प्रिये! वही भेद अनुमन्य।
इष्टलिंग के मोह से मोही बने वदन्य।।56।।

त्यक्त्वाऽभिमानं देहादौ जङ्गमैकाभिमानवान्।
चरलिङ्गैकभक्तः स्यादन्यभक्तिविवर्जितः॥57॥

देहेन्द्रिय, अभिमान तज, इतर देव से दूर।
भक्त, भक्ति में इष्ट की, रति रखता भरपूर।।57।।

अन्यपूजां परित्यज्य चरलिङ्गं प्रपूजयेत्।
अयं च चरलिङ्गस्य पूजको नान्यपूजकः॥58॥

साधक पूजक तब बने, जब अन्तेतर त्याग।
केवल अपने इष्ट से रखे सुदृढ़ अनुराग।।58।।

अर्थप्राणादिकं सर्वं प्रीत्या कुर्याच्चरार्पितम्।
चरलिङ्गैकवीरः स्यात् पुनः स्वप्नेऽपि न स्मरेत्॥59॥

प्रीति अर्प सब इष्ट को बनता स्वयं फकीर।
वह चरलिंगी भक्त प्रिय! कहलाता है वीर।।59।।

सर्वं चरार्पितं कृत्वा तत्प्रसादं विशेषतः।
यो भुङ्क्ते चरलिङ्गस्य प्रसादी नान्यलोलुपः॥60॥

जो प्रसाद करता ग्रहण, पूछ इष्ट अभिराम।
उसे प्रसादी नाम की संज्ञा मिले ललाम।।60।।

शिवरूपान् चरान् पूज्यान् प्राणवत् परिभावयन्।
अयं च चरलिङ्गैकप्राणी स्यान्नान्यमानसः॥61॥

शिवस्वरूप में साधकर जो रखता निज प्राण।
करते प्रभु उस प्राणि का बहुभांतिक कल्याण।।61।।

एवं मद्रूपतापन्नं चरलिङ्गं समर्चयेत्।
गणत्वं प्राप्य सुचिरं मोदते सुखलीलया॥62॥

नित्यप्रति चरलिंग का जो करता है ध्यान।
गाणपत्य पद प्राप्त कर, पाता सुख सम्मान।।62।।

षड्विधः प्रसादलिङ्गभक्तः

एवं प्रसादलिङ्गस्य स्थलं च शृणु तत्त्वतः।
अन्यद्रव्यरुचिं त्यक्त्वा पूर्वपूजादिवर्जितः।
प्रसादलिङ्गमोही स्यादन्यमोहविवर्जितः॥63॥

अब प्रसाद लिंग भक्त के सुनो प्रिये ! छह भेद।
यकलिंगी रतिरक्त को मोही कहते वेद।।63।।

प्रसादलिङ्गभक्तस्तु पूर्वाहारनिरासकः।
प्रसादपूजको देवि परमैत्र्यादिवर्जितः॥64॥

निराहार पूजन करें, प्रसादलिंगी भक्त।
जो हैं पूजक–नामधर, प्रसाद में अनुरक्त।।64।।

करेण परवित्तं तु कदापि नहि संस्पृशेत्।
स तु प्रसादलिङ्गैकवीरः स्यान्निस्पृहः सदा॥65॥

पर धन की खातिर न जो, होता भक्त अधीर।
वह जितेन्द्रिय भक्त प्रिय ! कहलाता है वीर ॥65॥

आदानार्थं च दानार्थं करं नैव प्रसारयेत्।
नान्यत् किञ्चित्प्रसादस्य प्रसादी क्वापि संस्पृशेत्॥66॥

दान–निमित्त पसारता नहीं कभी जो हाथ।
उसे प्रसादी कह सभी, रोचित करते साथ॥66॥

न कुर्याज्जीवहिंसां च परैर्वा नापि कारयेत्।
प्रसादलिङ्गप्राणी स्यात् स भवेदात्मबोधकः॥67॥

हिंसा स्वयं करे नहीं, अपि न करावै जोय।
प्राणी कहलावै रूचिर प्रसाद लिंगी सोय॥67॥

इत्थं प्रसादलिङ्गैकपरो भूतदयान्वितः।
यः पूजयति मां देवि मत्सायुज्यमवाप्नुयात्॥68॥

जो निज अन्तस् दया का, रखें बनाकर गेह।
पद वह मम सायुज्य का पाता निस्संदेह॥68॥

षड्विधो महालिङ्गभक्तः

महालिङ्गस्थलेऽप्येवं भेदः संकथ्यतेऽधुना।
त्यक्तलोकसमाचारो लिङ्गनिष्ठैकमानसः।
स महालिङ्गमोही स्यादन्यमोहविवर्जितः॥69॥

महालिंग के भी सुनो प्रेयसि! छहों प्रकार।
मोही वह जो इष्ट हित, तन–मन करे निसार॥69॥

पूर्वभक्तस्थलं त्यक्त्वा पूर्वकर्मादि वर्जयेत्।
स महालिङ्गभक्तः स्यादन्यभक्तिविवर्जितः॥70॥

मात्र इष्ट के लिंग में रहे जो कि अनुरक्त।
कहलाता सच्चा वही महालिंग का भक्त॥70॥

त्यजेत् संसर्गमज्ञानां त्यजेद् वै भाषणादिकम्।
शुद्धसत्त्वाश्रयो यस्तु स महालिङ्गपूजकः॥71॥

राग–रंग से दूर रह, जो सबसे विलगाय।
सत्संगति में ही रमे, सत्पूजक कहलाय।।71।।

सृष्टिस्थितिलयाद्यं हि जीवकृत्यं न च स्मरेत्।
स महालिङ्गवीरः स्यान्नान्यचित्तसमाश्रयः॥72॥

तोड़–तोड़ कर जो रखे, दर्पों की प्राचीर।
महालिंग का भक्त वह कहलाता है वीर।।72।।

पूर्वकर्मादिकान् सर्वानन्तर्लिङ्गे निवेदयेत्।
महालिङ्गप्रसादी स्यात् पङ्क्तिभोजनवर्जितः॥73॥

नहीं पंक्ति में बैठकर भोजन करता जोय।
महालिंग के गोत्र का वहीं प्रसादी होय।।73।।

बाह्यार्चनादि सन्त्यज्य भवेदान्तरपूजकः।
आत्मार्पको महालिङ्गप्राणी भवति पार्वति॥74॥

शुद्ध चित्त से भाव की ले जो पूर्ण समाधि।
महालिंग की वह करे, प्राणी प्राप्त उपाधि।।74।।

महालिङ्गस्थले त्वेवं मानसैरुपचारकैः।
अर्चयेद्यस्तु मां नित्यं मत्सायुज्यमवाप्नुयात्॥75॥

महालिंगिस्थलों में कर मानस–उपचार।
संयुति शिवसायुज्य की पाता सहज प्रकार।।75।।

आहत्य 36 लिङ्गस्थलानि

एवं लिङ्गस्थलं देवि तदङ्गस्थलयोगतः।
एकैकं षड्विधं प्रोक्तं तेन षट्त्रिंशतां गतम्।
पूर्वपूजासमायोगाद् उत्तरोत्तरमाश्रयेत्॥76॥

अंगस्थलि, लिंगस्थली यूँ बनते छत्तीस।
अनुदिन साधक की करें जो गति, मति इक्कीस।।76।।

तस्मादेकं परं लिङ्गं नामरूपक्रियात्मना।
संस्थितं ज्ञानकर्मभ्यामङ्गेऽस्मिन् षट्स्थलात्मके॥77॥

इसी भांति पर लिंग में रतिरत हैं सब अंग ।
जो चिति को करते रहे उच्छल जलधि तरंग ।।77।।

इष्टलिङ्गं तु बाह्याङ्गे प्राणलिङ्गं तथाऽन्तरे।
आत्मनिष्ठं भावलिङ्गमेवं ज्ञेयं नगात्मजे॥78॥

वाह्यांगों में भी इसी भांति भेद संज्ञेय ।
जो साधक को बांटते रहे प्रकाम प्रदेय ।।78।।

आचारो नासिकाङ्गे स्याज्जिह्वाङ्गे गुरुलिङ्गकम्।
गङ्गे शिवलिङ्गं स्यात् त्वगङ्गे चरलिङ्गकम्॥79॥

नाम, अंग, जिह्वा, नयन, सुस्पर्शन इत्यादि।
गुरू, शिव, चर, आचार है, धारे सुप्त समाधि ।।79।।

प्रसादलिङ्गं श्रोत्राङ्गे महालिङ्गं हृदि स्थितम्।
एवं कर्मेन्द्रियाङ्गेषु लिङ्गयोगो विधीयते॥80॥

पाँचों कर्मोद्रियों से पँचलिंगी सम्बन्ध ।
श्रोत्रादिक से जोड़ जो रहे कन्ध से कन्ध ।।80।।

आचारलिङ्गं तत्रोक्तं शिवलाञ्छनसंयुतम्।
आचारलिङ्गसम्बन्धि गुरुलिङ्गमुदाहृतम्॥81॥

शिवचिह्नों से सज्ज जो रखता अपने अंग।
वह आचारी लिंग का साधक, भक्त, मलंग।।81।।

गुरुलिङ्गोपदिष्टं यच्छिवलिङ्गं तदीरितम्।
शिवलिङ्गमुखं यत्तत् चरलिङ्गमुदाहृतम्॥82॥

जंगमलिंग, शिवलिंग का मुख समझो अभिराम।
गुरूलिंग के उपदेश से जो है मिला सकाम ।।82।।

चरलिङ्गोपलब्धं यत् तत्प्रसादाख्यलिङ्गकम्।
प्रसादसमनुग्राहि महालिङ्गमिति क्रमात्॥83॥

जंगमलिंग, प्रसाद लिंग, मिल साधें परमार्थ।
महालिंग करता सदा प्रसादलिंग कृतार्थ ।।83।।

आचारलिङ्गमुख्यानां सम्बन्धं चोत्तरोत्तरम्।
ज्ञात्वा लिङ्गाङ्गयोरर्थं तत्सम्बन्धं च पार्वति।
गुरूक्तेनैव मार्गेण जानीयात् सूक्ष्मभावतः॥84॥

नहीं ज्ञान से और कुछ रहा प्रिये! अस्पृश्य।
साधक हर सम्बन्ध को, पर, ले जान अवश्य।।84।।

एवं लिङ्गाङ्गसम्बन्धज्ञानं गोप्यं सुदुर्लभम्।
उपदिष्टं तव प्रीत्या मोक्षमार्गैकसाधनम्॥85॥

मुक्ति–प्राप्ति की गोप्य अति, युक्ति यही है मात्र।
बतलाया जिसको शुभे! तुम्हें, समझ सत्पात्र।।85।।

इति लब्ध्वा परं ज्ञानं गुरुकारुण्यतः प्रिये।
वीरशैवपरो भूत्वा यजेन्मां लिङ्गरूपिणम्॥86॥

गुरू–अनुकम्पा बिन नहीं सुख जिनके उपभोग्य।
लिंगरूपधर शिव सदा, यजन आदि के योग्य।।86।।

स एव सर्वतत्त्वज्ञो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः।
तस्य दर्शनमात्रेण मुक्तो भवति मानवः॥87॥

शिष की ऐसी साधना, जगती में अभिनन्द्य।
ऐसे मोक्षद भक्त का दर्शन भी अविवन्द्य।।87।।

एवमुक्तं शिवज्ञानं वीरशैवप्रबोधकम्।
तस्मादेतन्न वक्तव्यं यस्मै कस्मै वरानने।
वक्तव्यं हि प्रयत्नेन भक्ताय प्राणलिङ्गिने॥88॥

नहीं हर किसी को शिवे! गोप्य ज्ञान यह देय।
गात्र प्राणलिंगी समुद प्राप्त करें पाथेय।।88।।

इतोऽधिकतरं ज्ञानं नास्ति सर्वार्थसाधनम्।
प्रोक्तमेवं तव प्रीत्या किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥89॥

इससे बढ़कर दूसरा नहीं अन्य है ज्ञान।
अब तुम अगले प्रश्न से करवाओ पहचान।।89।।

✡✡✡

नवमः पटलः

देव्युवाच

भगवन् परमेशान सर्वानुग्रहतत्पर।
लिङ्गाङ्गस्थलसम्बन्धस्वरूपं हि श्रुतं मया॥1॥

लिंग, अंग के भेद सब लिए आपसे जान।
शेष और है यक अभी, जिज्ञासा बलवान॥1॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि भक्तमाहात्म्यमुत्तमम्।
तत्स्वरूपं च मे स्वामिन् कृपया तद्वद प्रभो॥2॥

जो बतलाये शैवगण सब के सब दिव्यात्म्य।
अब इनके बतलाइए उत्तम प्रभो! महात्म्य॥2॥

शिव उवाच

साधु पृष्टमिदं देवि सर्वलोकहितं परम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्।
संक्षिप्यैतत् प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिता॥3॥

अपने प्रश्न सटीक का उत्तर सुनो सटीक।
लेकिन अपना ध्यान भी रखना बिल्कुल ठीक॥3॥

भक्ताश्चतुर्विधाः

भक्ताश्चतुर्विधा लोके नानालक्षणसंयुताः।
कनिष्ठा मध्यमाश्चैवमुत्तमा उत्तमोत्तमाः।
प्रख्याता भुवने देवि तत्तदाचारभेदतः॥4॥

कनिष्ठ, मध्यम, उत्तमी, उत्तमोत्तमी भूप।
भक्त भेद– अनुसार हैं प्रियसि चार स्वरूप॥4॥

सिद्धविद्याधरादीनां लोकान् वै समुपाश्रिताः।
वसन्ति तत्र भक्तास्ते कनिष्ठा मदनुज्ञया॥5॥

मेरी आज्ञा से बने अन्य लोक वासिष्ठ।
गणना में वे शैलजे! पाते कोटि कनिष्ठ॥5॥

भक्ताश्च मध्यमा देवि त्रिविधा लोकपूजिताः।
ते च राजर्षयः केचित् केचिद् ब्रह्मर्षयः परे॥6॥

मध्यम कोटिक भक्त हैं लोकपूज्य राजर्षि।
कुछ उनमें ब्रह्मर्षि हैं, अन्येतर देवर्षि॥6॥

अन्ये देवर्षयः प्रोक्ताः शापानुग्रहकारकाः।
चरन्त्यखिललोकेषु मदाज्ञापरिपालकाः॥7॥

चलते ये हर लोक में करते कृपा अमाप।
हो जाते हैं रूष्ट तो दे देते हैं शाप।।7।।

उत्तमास्त्रिविधाः

उत्तमास्त्रिविधाः प्रोक्ता भक्ताश्च परमेश्वरि।
उत्तमाचारभेदात्तु तत्तद्योग्यपदे स्थिताः॥8॥

उत्तम कोटिय भक्त भी हैं प्रिय तीन प्रकार।
जिन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हैं, आचारों–अनुसार।।8।।

सालोक्यमास्थिताः केचित् सामीप्यं च तथा परे।
सारूप्यं चापरे प्राप्तास्तत्तद्वृत्त्यनुसारतः।
मदाज्ञया पदेष्वेषु वसन्ति हि निराकुलाः॥9॥

यशायोग्य पदवी जिन्हें दी मैंने सायास।
ये मेरे आदेश से करते यहीं निसास।।9।।

उत्तमोत्तमा भक्ताः

उत्तमोत्तमभक्तास्तेऽप्युत्तमोत्तमवृत्तयः।
प्राप्नुयुः स्वेच्छया देवि पदमप्युत्तमोत्तमम्॥10॥

कुछ आचार–विचार से हैं गुरूगरिम, गरिष्ठ।
उत्तम से उत्तम जिन्हें पदवी मिली विशिष्ट।।10।।

ये वीरशैवनिरताः प्राणलिङ्गपरायणाः।
ये च धर्मैकनिरता भक्तास्ते चोत्तमोत्तमाः॥11॥

वीरशैव जो आचरण करें धर्म–अनुसार।
उत्तमोत्तम श्रेणि के हैं उनके अधिकार।।11।।

येन केनापि मार्गेण येन केन च कर्मणा।
शिवैकनिष्ठमनसो भक्तास्ते चोत्तमोत्तमाः॥12॥

वे भी कहलाते प्रिये उत्तमोत्तम भक्त।
येन–केन शिवतत्व में जो रहते अनुरक्त।।12।।

देव्युवाच

किमाकारा हि भक्ताश्च किंकर्माश्रितवृत्तयः।
कथंभूतगुणा ज्ञेयास्तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर॥13॥

वृत्ति कर्म का भी प्रभो, कीजै तनिक बखान।
किस गुण के कारण इन्हें मिलती है पहचान।।13।।

शिव उवाच

भक्तलक्षणम्

शिवभक्ता महात्मानः कामादिगुणवर्जिताः।
त्यक्तलोकसमाचारा निरस्तभवबन्धनाः॥14॥

अपनी भावित भक्ति में रहते हरदम चूर।
हर लौकिक आचार से, काम क्रोध से दूर।।14।।

निर्माया निरहङ्कारा: शान्ताः सर्वत्र पूजिताः।
रागादिगुणनिर्मुक्ता न वाक्पाणिवशंगताः॥15॥

सांसारिक चित् वृत्ति में, कभी न होते लिप्त।
इनसे सम्बन्धित क्रिया रखते अति संक्षिप्त ।।15।।

न चक्षुःश्रोत्रवशगाः क्षुत्तृड्भयविवर्जिताः।
तत्त्वनिष्ठाः सदा दान्ताः पुत्रदारादिनिस्पृहाः॥16॥

भूख– प्यास, भय आदि भी, इन्हें न देते त्रास ।
इनके प्रति ये शैवगण रहते सदा उदास ।।16।।

शिवज्ञानरता नित्यं शिवज्ञानैकतत्पराः।
शिवधर्मरताः कर्मनिष्ठाः शिवपरायणाः॥17॥

कर्मनिष्ठ रहते हुए, जप तप करें अगाध।
रखते अपने इष्ट को साध और आराध ।।17।।

शिवाश्रितेषु मर्त्येषु शिवज्ञाने शिवव्रते।
शिवाचारे च सर्वत्र शिवोत्सवपरेषु च॥18॥

शिवाचार पालित करें, सह उत्साह, सगर्व ।
गायें इनकी कीर्ति के समुद गीत गन्धर्व ।।18।।

मम लिङ्गाङ्गसङ्गेषु चरेषु च विशेषतः।
भक्ताः कृताभिमानाश्च कृतकृत्या निराकुलाः॥19॥

हर स्वजनों के प्रति रखें, प्रीति और विश्वास ।
होने देते पुण्य का कभी नहीं ये ह्रास ।।19।।

अव्यग्राः सत्त्वसम्पन्ना अधिज्ञानाश्च सर्वशः।
सत्यवाक्यरता नित्यं सदाचारव्रताः शुभाः॥20॥

सत्य वचन ही बोलते, पालें सत् आचार।
जगभर का हित सोचकर करते हैं उद्धार।।20।।

सर्वत्र सत्यसंकल्पा दुराचारविरोधिनः।
निर्द्वन्द्वा निर्मला नित्या निरानन्दाभिकाङ्क्षिणः॥21॥

निर्मल चिति के चित्त के, आनन्दों के कन्द।
नष्ट करें दुख द्वन्द्व सब, रहकर परमानन्द।।21।।

स्वदारनिरता नित्यं भूतिरुद्राक्षसंयुताः।
गुरुशुश्रूषणासक्ता गुरुकार्यैकतत्पराः॥22॥

भार्या में ही रति रखें और न पालें चाह।
करें न सुख की कामना, पर दुख की परवाह।।22।।

महोत्साहा महावीरा महासत्त्वपराक्रमाः।
एते भक्ता मया देवि कथिता लोकविश्रुताः॥23॥

प्रबल पराक्रम संजोते, समाधान–निष्णात।
ये शुचि साधक लोक में होते हैं प्रख्यात।।23।।

भक्तमहिमा

ते भक्ता यत्र तिष्ठन्ति तत्तीर्थं तत्तपोवनम्।
तस्मात् तद्दर्शनादेव धन्यो भवति मानवः॥24॥

इनके दर्शन प्राप्त कर होते मानव धन्य।
तीर्थधाम बनते कभी कभी, प्रीति–पर्जन्य।।24।।

ये पूजयन्ति तान् नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।
तेषामहं समुद्धर्ता संसारभवसागरात्॥25॥

जो जन ऐसे भक्ति–प्रति श्रद्धा रखें अपार।
मैं उनका भवसिन्धु से करता बेड़ा पार ।।25।।

ये पोषयन्ति तान् भक्त्या भोजनाच्छादनादिभिः।
ते वै मम प्रियकरास्तव चापि महेश्वरि॥26॥

जो इनकी सेवा करें, पूजे प्राणित पाद।
हम दोनों का भी सुलभ उनको प्रीति–प्रसाद।।26।।

मासं संवत्सरं वापि यावज्जीवमथापि वा।
प्रकल्प्य जीविकां तेभ्यो यो रक्षति यथासुखम्।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये समाहितमनाः शृणु॥27॥

जीवन–चर्या का करें, इनकी, जो परवाह।
उनको विविध प्रकार मैं देता सौख्य अपार।।27।।

सर्वकर्माणि निर्धूय निर्मलो निरुपद्रवः।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विमानशतसंकुलः॥28॥

तारे कुल इक्कीस, निज, काट पाप के बन्ध।
सूर्य–सदृश रथ पर चढ़ा, आते दिव निर्बन्ध।।28।।

अप्सरोगणसंकीर्णः स्तूयमानो महर्षिभिः।
दिव्यं विमानमारुह्य सूर्यकोटिसमप्रभम्।
स गच्छेत् परमं स्थानं शिवलोके शिवात्मकम्॥29॥

प्राप्त शिवात्मक पद करें, गायें ऋषिगण गान।
लोकाचारी स्वजन सब, समझें ईश समान।।29।।

ततः पृथ्वीं समासाद्य प्राणलिङ्गाङ्गयोगभाक्।
तेन संशोधितप्राणो मत्सायुज्यमवाप्नुयात्॥30॥

पाये शिव सायुज्य जब भू पर जन्मे आय।
प्राण लिंग के साथ वह अंगीभाव बिलाय।।30।।

पादुकासनशय्यादि दत्त्वा तान् प्रणमेन्नरः।
तस्य सिद्धिर्भवत्येव सत्यं सत्यं वरानने।
किं पुनर्बहुनोक्तेन स एवाहं न संशयः॥31॥

श्रेष्ठ भक्त इस भाँति का पूजनीय हर ठौर।
सिद्ध लाभ का जो रखे सेवक के सिर मौर।।31।।

श्रेष्ठा भक्ताः

लोके हि बहुधा भक्ता नानालाञ्छनधारिणः।
तेषु श्रेष्ठा महादेवि शिवलाञ्छनसंयुताः॥32॥

यूँ तो इस संसार मे भक्त कई हैं प्रेष्ठ।
पर धारें शिवचिह्न जो, वे ही सबसे श्रेष्ठ।।32।।

तेषु लिङ्गाङ्गिनः श्रेष्ठा वीरशैवपरायणाः।
तेषु श्रेष्ठा महाभागाः षट्स्थलज्ञानपारगाः।
तेभ्योऽधिकस्तत्समो वा नास्ति भक्तो जगत्त्रये॥33॥

इनमें शिवसिद्धान्त के निष्ठित अधिक वरीय।
इन सबकी महिमा अनत, गुरू पर गरिम, गरीय।।33।।

शिवो भक्तपराधीनः

भक्तस्तु तादृशो यत्र देशे वसति पूतधीः।
नित्यं वसामि तत्रैव सगुणोऽहं त्वया सह॥34॥

ऐसी पावन बुद्धि का टिके जहां भी भक्त।
मेरा मन सह आपके रहे वहीं अनुरक्त।।34।।

भक्तो हि मां वशीकर्तुं समर्थः खलु भामिनि।
यतो भक्तपराधीनो भक्त्याऽहं विवशीकृतः॥35॥

ऐसे प्यारे भक्त की महिमा बड़ी महान।
मुझको कर सकता विवश, देने को वरदान।।35।।

ततोऽहं नहि कैलासे न मेरौ न च मन्दरे।
यत्र तिष्ठन्ति मद्भक्तास्तत्र तिष्ठामि पार्वति॥36॥

उस स्थिति में पार्वति ! मैं न टिकूं कैलास।
ना मन्दर, न मेरू गिरि, निवसूँ उसके पास।।36।।

तस्मात् सर्वाणि तीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि पर्वतान्।
भौतिकानि च सन्त्यज्य भक्तमेव भजेत् सुधीः॥37॥

लौकिक जन को चाहिए, साधे शिव का भक्त।
उसके सम्मुख शक्तियां होतीं सभी अशक्त।।37।।

अज्ञानादथवा लोभात् तेषामपकृतं यदि।
कल्पावसानपर्यन्तं सोऽन्धे तमसि मज्जति॥38॥

अपकारे जो भी इसे, अथवा जाये ऊब।
नरक, लोक के, वह रहे, अन्धकार में डूब।।38।।

लोकोपकारनिरताः सर्वत्र समदर्शिनः।
तान् द्विषन्ति हि ये मोहात् तें वै निरयगामिनः।
अतस्तेषां प्रकर्तव्या परिचर्या सदा नरैः॥39॥

इनसे पाले मोहवश कोई, द्वेष, पुमान।
उसके दुखों का नहीं होता है अवसान।।39।।

भकाराद्भव इत्युक्तः ककारात् कलुषं भवेत्।
ततः सन्त्रायते तस्माद्भक्त इत्युच्यते बुधैः॥40॥

कलुष और भय से करे रक्षा जो भी व्यक्ति।
उस विद्वान मनुष्य की भक्ति धारती शक्ति।।40।।

भक्तसेवासमं पुण्यं नास्ति नास्ति नगात्मजे।
भक्तद्रोहसमं पापं न भूतं न भविष्यति॥41॥

इसकी सेवा से बड़ा पुण्य न कोई और।
जो इसका द्रोही बने, पाये कहीं न ठौर।।41।।

एवमुक्तं मया सर्वं भक्तमाहात्म्यमुत्तमम्।
वदतां श्रृण्वतां चैव सर्वसम्पत्प्रदायकम्।
एतस्मादधिकं किञ्चिन्नहि सम्पत्प्रकाशकम्॥42॥

लौकिक जन इस गाथ में पागें तन, मन, प्राण।
यह महात्म्य करता सभी लोगों का कल्याण।।42।।

एतावत् परमं तत्त्वमेतावत् परमं पदम्।
एतावत् परमं ज्ञानं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥43॥

परम तत्व, पद, ज्ञान का यही प्रकाशक बिन्दु।
जिनके पग धो धो पियें वरदानों के सिन्धु।।43।।

✡✡✡

दशमः पटलः

देव्युवाच

श्रुतं सर्वं मया देव मोक्षमार्गैकसाधनम्।
स्तोतुमिच्छामि देव त्वामनुजानीहि मां प्रभो॥1॥

एकमात्र पर-मुक्ति का, प्रभु ने किया बखान।
अब निज स्तुति की मुझे अनुमति दें भगवान।।1।।

शिवस्तुतिः

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भक्तवत्सल।
नमस्ते करुणासिन्धो परमेशाय ते नमः॥2॥

भक्तों के वत्सल रूचिर! हे करूणा के सिन्धु।
स्वीकारें मम प्रणति की आस्था के ये बिन्दु।।2।।

ईशानाय नमस्तुभ्यं नमस्तत्पुरुषाय च।
अघोराय नमो देव वामदेवाय ते नमः।
सद्योजाताय देवाय पञ्चब्रह्मात्मने नमः॥3॥

नमन करूं मैं तत्पुरूष! वामदेव! ईशान!
पंचब्रह्म के रूप हे, करूणाकलित निधान।।3।।

षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाय तत्त्वातीताय शम्भवे।
परतत्त्वस्वरूपाय तत्त्ववेद्याय ते नमः॥4॥

परतत्वों के रूप तुम तत्वातीत अजेय।
तत्वों द्वारा ही प्रभो! रहे सदा तुम ज्ञेय।।4।।

कालान्तक महादेव कालार्चितपदाम्बुज।
कालकल्पितमार्गाय कालरूपाय ते नमः॥5॥

महादेव! कालान्तक! दिव्यरूप अभिराम!
श्रीचरणों में मुहुर्मुहुः मैं कर रही प्रणाम।।5।।

किरातरूपमास्थाय विधेरन्यायवर्तिनः।
शिरोहराय दुष्टानां शासकाय च ते नमः॥6॥

उस किरात का रूप मैं, पूजूँ बारम्बार।
जिसने कुपथी ब्रह्म का सिर था लिया उतार।।6।।

दक्षाध्वरविनाशाय दक्षशीर्षापहारिणे।
भूयो रक्षितदक्षाय स्वयं दक्षाय ते नमः॥7॥

सोम, सूर्य, अपि अग्नि हैं, त्रय दृग जिसके रूप।
उसका मैं पूजन करूं, उर धर भक्ति अनूप।।17।।

त्यक्तेश्वराणां शिप्राणां दर्शयित्वा स्वकं महः।
तद्रक्षणं कृतं येन तस्मै ते प्रभवे नमः॥8॥

जिन शिप्रों ने ईश को बरबस दिया नकार।
उनको लाये राह पर, नमन प्रभो! सौ बार।।8।।

समुद्रमथनोद्भूतहालाहलमहाभयात् ।
त्रिजगद्रक्षितं येन विषकण्ठाय ते नमः॥9॥

त्रिलोक की रक्षार्थ प्रभु ! किया हलाहल पान।
कितनी प्रभु ! मैं आपकी महिमा करूं बखान।।9।।

कृतापराधं कन्दर्पं दग्ध्वा फालेक्षणाग्निना।
सोऽप्यनङ्गः कृतो येन तस्मै कामजिते नमः॥10॥

तृतीय दृग से आपने भस्मित किया अनंग।
फिर पहले-सा रूप दे, उसको किया मलंग।।10।।

मेरुकार्मुकशेषज्याविष्णुसायकभूरथः ।
अजयत् त्रिपुरं यस्तु तस्मै ते जिष्णवे नमः॥11॥

वध करने को त्रिपुर का साजे अनगिन साज।
कोटिश वन्दन आपके शिव शम्भू महाराज।।11।।

व्याघ्रासुरमहादर्पदलनं वै विधाय च।
दध्रे तच्चर्म यस्तस्मै व्याघ्रामित्राय ते नमः॥12॥

व्याघ्रासुर का वध किया, धारा उसका गर्व।
स्वीकारो मेरा नमन है सर्वेश्वर सर्व।।12।।

त्रिलोकभीकरं घोरमन्धकाख्यमहासुरम्।
यो जघान नमस्तस्मै अन्धकासुरवैरिणे॥13॥

नष्ट अन्धकासुर किया, तोड़ा उसका गर्व।
स्वीकारो मेरा नमन है सर्वेश्वर सर्व!।।13।।

जलन्धर-महादैत्यं पादाङ्गुष्ठकृतेन च।
चक्रेण योऽहरत् तस्मै जलन्धरजिते नमः॥14॥

दैत्य जलन्धर को वधा, जिस छवि ने हे नाथ।
उस छवि के सम्मुख झुका, इस दासी का माथ।।14।।

नारसिंहजिते तस्मै ब्रह्मशीर्षकपालिने।
तन्मालालङ्कृताङ्गाय हरिब्रह्महृते नमः॥15॥

जिसने हरि, अज-विजय का पाया श्रेय ललाम।
उस श्रेयी परमेश को बारम्बार प्रणाम।।15।।

जित्वा त्रिविक्रमं भूयस्तत्कङ्कालधराय च।
शिरोवेष्टितमत्स्याय स्वतन्त्राय च वै नमः॥16॥

त्रिविक्रमी अवतार को जीत धरा कंकाल।
है उस भगवत् रूप की महिमा बड़ी विशाल।।16।।

महावराहदंष्ट्राभिर्भूषिताय महात्मने।
सोमसूर्याग्निनेत्राय. महादेवाय ते नमः॥17॥

सोम, सूर्य, अपि अग्नि हैं, त्रय दृग जिसके रूप।
उसका मैं पूजन करूं, उर धर भक्ति अनूप।।17।।

बाणासुरस्तव प्रीत्या दत्तबाहुसहस्त्रिणे।
निवार्य तत्तमस्तस्मै वरदाय च ते नमः॥18॥

बाणासुर को हो मुदित भुज दे दिये हजार।
उस क्षमता का मैं करूं वन्दन बार हजार।।18।।

पुरा चतुर्मुखं सृष्ट्वा तस्मै विश्वसृजे मुदा।
ददौ यश्चतुरो वेदांस्तस्मै वेदात्मने नमः॥19॥

समुद बनाया ब्रह्म को सृष्टि-सृजन का हेतु।
कोटि-कोटि वन्दन तुम्हें हे कल्याणी केतु।।19।।

विष्णवे लोकरक्षार्थं शङ्खं चक्रं च यो ददौ।
सर्गादौ कृपया तस्मै नमो विष्णुपराय ते॥20॥

दामोदर को दे दिया शंख चक्र का दान।
हे सर्वेश्वर! आपकी लीला बड़ी महान।।20।।

कल्पान्ते संहृतं कृत्वा जगत् स्थावरजङ्गमम्।
एको ननर्त यस्तस्मै महानाट्याय ते नमः॥21॥

ताण्डव का नर्तन किया, करके जग–संहार।
उस प्रलयंकर रूप को वन्दन बार हजार ।।21।।

ब्रह्मणा हंसरूपेण विष्णुना क्रोडरूपिणा।
अनिर्देश्यमहालिङ्गमूर्तये ज्योतिषे नमः॥22॥

रूप अनादि, अनन्त का जो आश्रय अभिराम ।
उस ज्योतिर्मय रूप को पुनि–पुनि नमन, प्रणाम ।।22।।

सर्वभूताधिपतये सर्वविद्याधिपाय च।
सदाशिवाय ते देव ब्रह्माधिपतये नमः॥23॥

सब देवों के देव तुम सब भूपों के भूप ।
वन्दित है वह आपका परम सदाशिव रूप ।।23।।

विश्वतः पाणिपादाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च।
विश्वतो व्याप्यरूपाय नमो विश्वात्मकाय ते॥24॥

विश्वात्मक वह रूप छवि, कलित, कान्त कमनीय।
है इस दासी के लिए बार–बार नमनीय ।।24।।

अव्यक्ताय पुराणाय बहुरूपैकरूपिणे।
संस्थिताय तमः पारे तेजोरूपाय ते नमः॥25॥

हे तेजेश्वर! तेज के महिमामय छविधाम!
सुन्दर सुखद, स्वरूप को प्रणत प्रणाम, प्रणाम ।।25।।

वेदाः समस्ता अपि मुख्यवृत्त्या भवन्तमेव प्रतिपादयन्ति।
कर्तारमेकं जगतां तथापि मायावृतास्त्वां नहि जानते हि॥26॥

प्रतिपादित करते सभी वेद आपका स्वत्व।
जान सके न तथापि प्रभु! जन आपका महत्व ।।26।।

इन्द्रोऽनलो दण्डधरोऽथ नैर्ऋतिः पाशी च वायुर्धनदश्च शूली।
कुर्वन्ति नित्यं निजकृत्यजातं यत्प्रेरितास्तं शरणं व्रजामि॥27॥

घड़ी–घड़ी जो देखता जग के हाल–हवाल।
जाती मैं उसकी शरण, जिसे भजें दिक्पाल।।27।।

विष्णुर्जगत्पाति सृजत्यजश्च रुद्रो हरत्येव लयावसाने।
यदाज्ञया ते निजकार्यदक्षास्तं शङ्करं त्वां शरणं व्रजामि॥28॥

सृष्टि सृजें, पालें जिसे ब्रह्मा और उपेन्द्र।
वे ही हैं आराध्य मम गौरवेय, गर्वेन्द्र।।28।।

ददाति लक्ष्मीः श्रियमम्बिकाऽपि ज्ञानं च दिव्यं परमात्मनिष्ठम्।
वाणी च वाचं जनसंहतीनां यदाज्ञया तं शरणं व्रजामि॥29॥

जाती उस शिव की शरण, पा जिनके आदेश।
लक्ष्मी, अम्बा, शारदा, करती शक्ति–निवेश।।29।।

आपश्च भूतान्यपि जीवयन्ति वायुश्च वाति ज्वलतीह वह्निः।
धत्ते च धात्रीमपि पन्नगेशो यदाज्ञया तं शरणं व्रजामि॥30॥

जाती उस शिव की शरण, पा जिनसे आशीष।
अग्नि, वायु, जल, संचरित धारें धरणि अहीश।।30।।

इन्द्रादयः सर्वसुराश्च नित्यं त्वच्छासनेन प्रभवन्ति भूयः।
अन्ते च यान्ति स्वपदं पुराणं त्वामेव तस्माच्छरणं गताऽस्मि॥31॥

जाती उस शिव की शरण नमें जिसे इन्द्रादि ।
अन्य देवतावृन्द भी पाएं विविध उपाधि।।31।।

त्वन्मायया मोहितमेव जातं त्वत्प्रेरितं चित्तमिदं हि नित्यम्।
करोति कृत्यं नियतं त्वदुक्तं तस्माच्छरण्यं सततं भजे त्वाम्॥32॥

भजन करूं उस इष्ट का जो है सबका नाथ।
जिससे प्रेरित यह जगत, गर्वित रखता माथ।।32।।

ब्रह्माण्डसङ्घास्त्वयि संस्थिता हि यथा महाब्धौ जलबुद्बुदौघाः।
ब्रह्माण्डकोट्याश्रितदिव्यरूपं तस्मादहं त्वां प्रणता भवामि॥33॥

कोटि–कोटि ब्रह्माण्ड में राज रहे प्रभु! आप।
इसीलिए अर्पित करूं अपने नमन–कलाप।।33।।

गृहं श्मशानं भसितं त्वदङ्गे भृत्याश्च ते घोरपिशाचसङ्घाः।
भूषा तवास्थीनि करोटिमाला चित्रं तथापीश्वर ते शिवत्वम्।।34।।

अशुभ चिह्न धारे सभी फिर भी शिव है नाम।
क्यों न करूं मैं ह्रदय से उसको नमन, प्रणाम।।34।।

वस्त्रं च ते व्याघ्रकठोरचर्म हाराश्च सर्पा विषपूर्णवक्त्राः।
करस्थशूलाग्निकपालपाशास् तथापि चित्रं शिवरूपमेतत्।।35।।

व्याघ्रचर्म धारण करें, सर्पों के गलहार।
फिर भी स्वामी ! आपको, शिव कहता संसार।।34।।

त्यक्त्वा सतां वर्त्म पितुश्च पादौ छित्त्वा भवन्तं शरणं गताय।
विप्राय नित्यत्वफलप्रदाय तस्मै नमस्ते नतवत्सलाय।।36।।

लीला है प्रभु ! आपकी, अगम, अनन्त, अपार।
शरणागत शठ विप्र भी दिया आपने तार।।36।।

येनावृते खं च मही च भानुर्यत्तेजसा निस्तपति प्रभावान्।
विश्वाधिकं रुद्रमृषिं महान्तं वदन्ति तस्मै पुरुषाय ते नमः।।37।।

नमन करूं उस सत्व को, जो है कृपा–निधान।
गाती हैं जिसकी समुद, श्रुतियाँ कीरति–गान।।37।।

वेदाश्च यं स्तोतुमशक्नुवन्तस्त एव भूयो मनसा निवृत्ताः।
अप्राप्य चानन्दनिधिं महेशं तं नौम्यवाङ्मानसगोचरं त्वाम्।।38।।

नमन करूं उस ईश को जिसे वेद इत्यादि।
छूने में रहते विफल, लेते धार समाधि।।38।।

उत्पद्यन्ते विलीयन्ते यथाऽब्धौ वीचयस्तथा।
त्वयि सर्वमिदं दृश्यं जगदेतच्चराचरम्।।39।।

महासिन्धु में ज्यों लहर, उठ हो जाती लीन।
वैसे ही प्रभु आपके सम्मुख संसृति दीन।।39।।

स्वतन्त्रशक्तिमान् देव त्वमेव पुरुषोत्तमः।
त्वदधीनमिदं विश्वं विश्वनाथाय ते नमः।।40।।

परम पुरूष हैं आपश्री, महाशक्ति–सम्पन्न।
रहता साधक आपका नहीं कदापि विपन्न ।।40।।

समस्तसाधनोपाय सर्वसिद्धिप्रदायक।
सर्वाधार विरूपाक्ष भक्तवत्सल ते नमः॥41॥

साध्य आप साधनों के, जगपति, जगदाधार।
विरूपाक्ष, करते सदा भक्तों का उद्धार।।41।।

शैवसिद्धान्तमार्गस्थ भक्त कायस्थ शङ्कर।
नमस्ते दीनसुजनपरित्राणपरायण॥42॥

आप शैवसिद्धान्त के पालक, पोषक, पूर्ण।
जिसके सम्मुख हर असत् हो जाता है चूर्ण।।42।।

नमश्चापत्प्रतीकारकरणाय महात्मने।
सर्वान्तरात्मने तुभ्यं नमस्ते परमात्मने॥43॥

हर आत्मा में है बसी छवि आपकी ललाम।
देव आपको कर रही बारम्बार प्रणाम।।43।।

अखिलाम्नायसंस्तुत्य भक्तिग्राह्य स्तवप्रिय।
सर्वव्यापक देवेश नमस्ते भद्रदायक॥44॥

भक्तिभाव से प्राप्त हैं आप शान्ति–सुखधाम।
इसीलिए मैं कर रही बारम्बार प्रणाम।।44।।

उपमातीत सर्वेश समस्तामरपूजित।
समस्तशक्तिसंकाश परब्रह्मन् नमोऽस्तु ते॥45॥

निरूपमेय हैं आपश्री! दिव्य शक्ति सम्पन्न।
जो पूजे नित आपको, रहता नहीं विपन्न ।।45।।

अनन्तकोटिमार्तण्डचण्डतेजःस्वरूपिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते॥46॥

रूप सच्चिदानन्द जो धारें तेज प्रचण्ड।
भक्त आपको नमन कर, पाते कीर्ति अखण्ड।।46।।

ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूप कर्तृकृत्यक्रियात्मक।
भूतभव्यभवन्नाथ नमस्ते त्रिगुणात्मने॥47॥

ज्ञाता भी प्रभु ! आप हैं, ज्ञान, स्वयं हैं ज्ञेय।
भूत भविष्यत्, वर्त भी, कृत्य, क्रिया संज्ञेय।।47।।

नित्य निर्मल निर्द्वन्द्व निरामय निरञ्जन।
देवाचार्य नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥48॥

निर्विकार, निर्द्वद्व हैं, निर्मल नित्य स्वरूप।
देवों के आचार्य भी, अखिल सृष्टि के भूप ।।48।।

महिमानं महादेव ज्ञातुं स्तोतुं तव प्रभो।
श्रुतयोऽप्यसमर्था हि मादृशानां कुतो मतिः॥49॥

पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में, सबकी क्षमता व्यर्थ ।
महिमा जो जाने सकल, श्रुतियाँ भी असमर्थ ।।49।।

सर्वापराधान् मे स्वामिन् क्षमस्व जगतां प्रभो।
यतोऽहं देवदेवेश त्वदाज्ञावशवर्तिनी॥50॥

मैं दासी हूं आपकी, क्षमा करें अपराध।
मैं वशवर्ती आपके कैसे सकती साध ।।50।।

मया चापल्यभावेन यद्यदुक्तं तवाग्रतः।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव कृपादृष्ट्याऽवलोक्य माम्॥51॥

हे स्वामी! वर दो मुझे बनी रहे यह भक्ति।
इसमें ही मिल जायगी, सौख्य, शान्ति अरु शक्ति।।51।

शिव उवाच

स्तोत्रेणानेन तुष्टोऽस्मि तव भक्त्या च पार्वति।
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते॥52॥

कहें शिवा से, अद्रिजे ! हूं अत्यधिक प्रसन्न।
जो चाहो वर मांग लो, भक्तित भाव-प्रपन्न ।।52।।

देव्युवाच

वरमन्यं न याचेऽहं तव भक्तिं विना प्रभो।
तामेव सुदृढां देहि सैव मे परमा गतिः॥ 53॥

जो सुख तुम चाहो प्रिये! वह सब मिले अमाप।
हर अलभ्य भी प्राप्त कर, साधो कीर्ति-कलाप ।।53।।

तथैव सततं भूयात् किमलभ्यं तव प्रिये
पुनर्भक्तहितार्थाय वरमन्यं ददामि ते॥54॥

प्रिये! तुम्हारी कामना सब होवें परिपूर्ण
वर भक्तों हित दे रहा दूजा भी सम्पूर्ण ।।54।।

स्तोत्रमहिमा

त्वया कृतमिदं स्तोत्रं भक्तिभावेन भावितः।
यः पठेन्नियतो भूत्वा स याति परमां गतिम्॥55॥

इन स्तोत्रों का पाठ है सबके लिए विमृश्य।
दत्तचित्त हो जो करे, पाये मोक्ष अवश्य।।55।।

अभ्यसेदन्वहं देवि संवादमिममावयोः।
षट्स्थलज्ञानसम्पन्नः प्राप्नुयान्मुक्तिमुत्तमाम्॥56॥

जो हम दोनों का पढ़े, सुने नित्य संवाद।
उसके तत्क्षण ही सभी क्षर जाएं अपराध।।56।।

एवमुक्तं मया देवि मोक्षमार्गैकसाधनम्।
वेदागमपुराणानां सारभूतं तव प्रिये॥57॥

आगम, वेद, पुराण का सारभूत यह तत्व।
इस विधि चलकर अनिल भी सकता धार शिवत्व।।57।।

शास्त्रस्य गोपनीयता

गोपनीयमिदं शास्त्रं वीरमाहेश्वरप्रियम्।
तेषामेव हि वक्तव्यं वीरमार्गानुसारिणाम्॥58॥

वीरशैव का शास्त्र यह गोपनीय, अति गूढ़।
जिसको पढ़-सुन तज्ञ हो जाते हैं मतिमूढ़।।58।।

लिङ्गत्रयैकनिष्ठानां तत्प्रसादानुवर्तिनाम्।
अन्येषां तु न वक्तव्यं कदाचिद् भिन्नवर्त्मनाम्॥59॥

जिनके मन मे प्राणलिंग आदिक प्रति हो भक्ति।
उनको ही है देय यह, दिव्य स्तोत्र की शक्ति।।59।।

इति श्रुत्वा महाज्ञानं पावनं शिवशासनम्।
ध्यायमाना शिवं देवी तस्थौ सन्तुष्टमानसा॥60॥

तुष्ट हुई निज नाथ से, सुन यह पावन ज्ञान।
पार्वती करने लगीं, सर्वेश्वर का ध्यान।।60।।

***

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमबाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

ISBN 978-93-82639-48-0

9 789382 639480

₹ 100.00 Only